

समरथ



जुलाई — अगस्त 2006

नई दिल्ली

नाहि तो जनम नसाई

जर्मनी के मशहूर कवि बर्तोल्त ब्रेख्त ने नात्सी शासन के दौरान इस उम्मीद के साथ ये पंक्तियां लिखी थीं कि आने वाली पीढ़ियों को ऐसे स्याह दिन नहीं देखने पड़ेंगे जैसे 1930 और 40 के दशक में पूरी दुनिया को देखने पड़े। शायद उन्हें अंदाज़ा नहीं था कि ऐसे स्याह दिन एक बार फिर नए रूप में, नए समय में इंसानियत के सामने आने वाले हैं। दूसरा महायुद्ध खत्म हो चुकने के बाद भी हिरोशिमा और नागासाकी पर एटम बम गिराकर अमेरिका ने चेतावनी भी दे दी थी और अपने इरादे भी जाहिर कर दिए थे। सोवियत संघ के पतन के बाद शीत युद्ध खत्म होते ही अमेरिका और उसके पिट्टुओं ने बर्बर हिंसा के बल पर दुनिया को अपना गुलाम बनाने के नापाक मंसूबे लागू करने शुरू कर दिये थे। आज पूरी दुनिया युद्धोन्मादियों के लिए खेल का मैदान बन कर रह गई है। महाविनाश के हथियारों और एटमी हथियारों की तलाश के नाम पर एक के बाद एक कई देशों पर कब्ज़ा किया जा रहा है, आतंकवाद के खिलाफ युद्ध की आड़ में देशों पर हमला किया जा रहा है, एक खास धर्म व समुदाय को आतंकवादी कह कर बदनाम किया जा रहा है, एक ऐसा माहौल पैदा किया जा रहा है जहां उस समुदाय के हर व्यक्ति को संभावित आतंकवादी और खतरे के रूप में पेश किया जा रहा है। जी हां, हम अंधेरे के युग में जी रहे हैं। फासीवादी और नात्सी ताकतों के खिलाफ जूझने वाले महान साहित्यिक योद्धा ब्रेख्त ने इस स्याही के खिलाफ अपनी मुहिम को कमजोर कभी नहीं पड़ने दिया, कभी हिम्मत नहीं हारी। उनके शब्द और गतिविधियां करोड़ों लोगों की अभिव्यक्ति का माध्यम और ताकत थीं। आज हमें ऐसे और बहुत सारे लोगों की ज़रूरत है वरना ये चौतरफा जंग और तबाही हमें भी नहीं छोड़ेगी। जी हां, हम स्याह दौर से गुजर रहे हैं। जी हां, हमें इसका मुकाबला करना ही होगा। और हां, हम इससे लड़ेंगे भी और जीतेंगे भी।

अगली पीढ़ी के लिए

बेर्तोल्त ब्रेष्ट

1.

सचमुच मैं अंधेरे युग में जी रहा हूँ
सीधी-सादी बात का मतलब बेवकूफी है
और सपाट माथा दर्शाता है उदासीनता
वह, जो हंस रहा है
सिर्फ इसलिए कि भयानक खबरें
अभी उस तक नहीं पहुँची हैं

कैसा ज़माना है
कि पेड़ों के बारे में बातचीत भी लगभग जुर्म है
क्योंकि इसमें बहुत सारे कुकृत्यों के बारे में हमारी चुप्पी भी शामिल है।
वह जो चुपचाप सड़क पार कर रहा है
क्या वह अपने खतरे में पड़े हुए दोस्तों की पहुंच से बाहर नहीं है?
यह सच है : मैं अभी भी अपनी रोजी कमा रहा हूँ
लेकिन विश्वास करो, यह महज़ संयोग है

इसमें ऐसा कुछ नहीं है कि मेरी पेट-भराई का औचित्य सिद्ध हो सके
यह इत्तफ़ाक़ है कि मुझे बख़्शा दिया गया है
(किस्मत खोटी होगी तो मेरा खात्मा हो जायेगा)
वे मुझसे कहते हैं : खा, पी और मौज कर क्योंकि तेरे पास है
लेकिन मैं कैसे खा पी सकता हूँ
जबकि जो मैं खा रहा हूँ, वह भूखे से छीना हुआ है
और मेरा पानी का गिलास एक प्यासे मरते आदमी की ज़रूरत है।
और फिर भी मैं खाता और पीता हूँ।
मैं बुद्धिमान भी होना पसन्द करता
पुरानी पोथियाँ बतलाती हैं कि क्या है बुद्धिमानी :
दुनिया के टंटों से खुद को दूर रखना
और छोटी सी जिंदगी निडर जीना
अहिंसा का पालन
और बुराई के बदले भलाई
अपनी इच्छाओं की पूर्ति के बजाय
उन्हें भूल जाना
यही बुद्धिमानी है
यही सब मेरे वश का नहीं
सचमुच मैं अंधेरे युग में जी रहा हूँ।

2.
मैं अराजकता के दौर में आया शहरों में
जब भूख का साम्राज्य था
बगावतों के दौरान मैं लोगों से मिला
और मैंने भी उनमें शिरकत की
इस तरह गुज़रा मेरा वक्त
जो मुझे दुनिया में मिला था।

कत्लेआम के बीच मैंने खाना खाया
नींद ली हत्यारों के बीच
प्रेम में रहा निपट लापरवाह
और कुदरत को देखा हड़बड़ी में
इस तरह गुज़रा मेरा वक्त
जो मुझे दुनिया में मिला था।

मेरे ज़माने की सड़कें दलदल तक जाती थीं
भाषा ने मुझे कातिलों के हवाले कर दिया

मैं ज्यादा कर ही क्या सकता था
फिर भी शासक और भी चैन से जमे रहते मरे बगैर
यही थी मेरी उम्मीद
इस तरह गुज़रा मेरा वक्त
जो दुनिया में मिला था।

ताकत बहुत थोड़ी थी लक्ष्य था बहुत दूर,
वह दीखता था
साफ, गो कि मेरे लिए पहुंचना था कठिन
इस तरह गुज़रा मेरा वक्त
जो मुझे दुनिया में मिला था।

3.
तुम जो कि इस बाढ़ से उबरोगे
जिसमें कि हम डूब गये
जब हमारी कमज़ोरियों की बात करो
तो उस अंधेरे युग के बारे में भी सोचना
जिससे तुम बचे रहे
जूतों से ज्यादा देश बदलते हुए
वर्ग-संघर्षों के बीच से हम गुज़रते रहे चिन्तित
जब सिर्फ अन्याय था और कोई प्रतिरोध नहीं था।

हम यह भी जानते हैं कि
कमीनगी के प्रति घृणा भी
थोबड़ा बिगाड़ देती है
अन्याय के खिलाफ गुस्सा भी
आवाज़ को सख्त कर देता है
आह हम
जो भाईचारे की ज़मीन तैयार करना चाहते थे
खुद नहीं निभा सके भाईचारा
लेकिन तुम जब ऐसे हालात आए
कि आदमी, आदमी का मददगार हो
हमारे बारे में सोचना
तो रियायत के साथ!

(1936-38)

मूल जर्मन से अनुवाद
मोहन थपलियाल

ब्रेष्ट (1898 - 1956) महान जर्मन चिन्तक, कवि-नाटककार और सर्वहारा कला-साहित्य के अप्रतीक सिद्धान्तकार थे।

उस्ताद बिस्मिल्ला खाँ – भारत की साझी विरासत

—पार्थ चटर्जी

शहनाई के इतने खूबसूरत इस्तेमाल और उसमें इतनी बारीकी पैदा कर पाना खाँ साहब के ही वश की बात हो सकती थी। उनके होंठों से छूकर शहनाई “बोलने” लगती थी और संगीत में एक दिली बातचीत का सा भाव मालूम पड़ता था।

सत्तर साल पहले शहनाई को संगीत कार्यक्रमों में वाजिब जगह दिलवाने वाले उस्ताद बिस्मिल्ला खाँ (1916–2006) ने पिछले दिनों 21 अगस्त को बनारस में आखिरी सांस ली। खाँ साहब थके और बूढ़े तो थे लेकिन अभी सोने की तैयारी में नहीं थे। कला और सौन्दर्य की दुनिया में नए प्रतिमान गढ़ने वाले बिस्मिल्ला खाँ काफी अकेले हो चुके थे और भौतिक दुनिया से अरसा पहले मुक्त हो चुके थे लेकिन इस दौरान उन्होंने अपने तकरीबन 70 आश्रित परिजनों की जरूरतों को पूरा करने में कभी कोई कसर नहीं उठा रखी।

खाँ साहब की जिंदगी और कला के बीच कोई फासला नहीं था। दोनों चीजें एक दूसरे में मानों विलीन हो चुकी थीं। 1937 में कलकत्ता में हुए अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन में उन्होंने शहनाई की स्वर-लहरियों का ऐसा जादू बिखेरा था कि गुनी सुनने वाले भी दंग रह गए थे। उस वक्त उनकी उम्र महज 21 बरस थी। इसके बाद वे तकरीबन 50 साल तक शहनाई की दुनिया के सबसे करिश्माई फनकार बने रहे। कलकत्ते के अली हुसैन, वाराणसी के अनन्त लाल और पुरानी दिल्ली के जगदीश प्रसाद कमर, इन सबने शहनाई बजाई और सारे ही इस फन के माहिर उस्ताद भी थे पर किसी के पास भी लय-ताल की वो तुर्शी और बारीकी ना थी।

जब बिस्मिल्ला खाँ बजाते थे तो चाहे यमन जैसे बुलन्द राग में कई परतों की बंदिश हो या कोई साधारण सी लोकधुन हो, उनकी शहनाई सुनकर आम सुनने वालों की तो बात ही क्या, शौकीनों और तजुर्बेकारों का भी गला रुंध जाता था। उन्हें संगीत की ये बेमिसाल प्रतिभा व हुनर कहां से मिला, इस बारे में जानकार चाहे जो कहें पर खुद खाँ साहब अपनी इस कामयाबी और महारत के लिए अल्लाह और सरस्वती, दोनों को ही सीस नवाते थे।

एक नज़र से देखें तो संगीत उनके खून में था। शायद इसीलिए एक हद तक उनके लिए ये सबकुछ आसान भी था। उनके पुरखे संयुक्त प्रांत की एक भूतपूर्व रियासत के दरबारी संगीतकार थे। यह छोटी सी रियासत अब बिहार में पड़ती है। उनके चाचा अली बख्श, जिन्हें लोग विलायतू कहा करते थे, वाराणसी के विश्वनाथ मंदिर से जुड़े थे और उन्होंने ही बिस्मिल्ला खाँ को मंदिर के गर्भगृह के भीतर शिव की मूर्ति के सामने और बाहर जनता के सामने शहनाई बजाने का हुनर सिखाया था। ये दोनों शख्स साजिदों के साथ मंदिर के मुहाने से सटे चबूतरे पर बैठे शहनाई बजाया करते थे – इस बात से अनजान कि वे ऐसे समाज में एक नई रीत गढ़ने की कोशिश कर रहे हैं जो अभी भी वर्ग, जाति और मजहब की लकीरों से बंटा हुआ है।

सांस पर उनका नियंत्रण गजब का था। ये बात इसलिए और भी हैरतंगेज दिखाई देने लगती है कि खाँ साहब धूम्रपान के भारी शौकीन थे। तकरीबन सारी उम्र उन्होंने जमकर बीड़ियां फूकी थीं। 73 साल की उम्र तक भी उनकी आवाज में वही जुम्बिश और समृद्धि बनी

हुई थी और शायद ही कभी कोई तान जगह से झंझर-उधर पड़ती होगी। चंद नपे-तुले सुरों के जरिये पहले वो किसी राग के कोने-अंतरे और सिरों को उघाड़ते थे और फिर उसका मिजाज़ व आत्मा उभरती थी। खाँ साहब किसी खास राग में नई बंदिशें बनाने और उनको तराशने की सदियों से चली आ रही परंपरा के वारिस थे।

खाँ साहब गाने के भी बहुत शौकीन थे और उम्र की आठवीं दहाई के आखिरी सालों में भी बखूबी गा लेते थे। उन्हें तुमरी, दादरा, चैती, बारामासा और खयाल की सैंकड़ो बंदिशें ज़बानी याद थीं।

खाँ साहब गहरे तौर पर धार्मिक और इंसानियत-परस्त व्यक्ति थे। उनके प्यार की कोई सीमा नहीं थी। उन्हें तो पूरी मानवता से लगाव था। ये उनकी इंसानियत और सहनशीलता का ही नतीजा था कि 40 साल पहले वे बनारस में हुए सांप्रदायिक दंगों के दौरान अविचलित खड़े रहे। उनका मानना था कि जो गलत है वो भी अपने आप सही रास्ते पर आ जाएगा और जिंदगी में अर्थ भरने के लिए सुरों की श्रेष्ठता कायम होकर रहेगी।

भारत रत्न सहित तमाम ईनाम-सम्मान उन्हें मिले। कलाकारों में एम. एस. सुब्बुलक्ष्मी और पंडित रविशंकर के अलावा सिर्फ खाँ साहब ही थे जिन्हें भारत रत्न मिला था।

मेरे ज़हन में बिस्मिल्ला खाँ के संगीत की सबसे पुरानी और अविस्मरणीय स्मृति साठ के दशक से जुड़ी हुई है। दशक के आखिरी सालों में मैंने उनकी बजाये बागेश्वरी रात्रि राग की एलपी (लॉंग प्लेईंग) रिकॉर्डिंग सुनी थी। उस प्रस्तुति में उन्होंने बिछुड़ गए प्यार की बार-बार पीछा करने वाली स्मृति को निरर्थक अफसोस के भाव में नहीं बल्कि गहरे विवेक के स्तर पर साकार किया था। उस डिस्क को मैंने 35 साल पहले अपने दोस्त के घर पर सुना था, लेकिन उस अमर संगीत का असर व याद आज भी मेरे पास है। इसके अलावा तिलक कामोद, केदार, जैजेवंती, श्याम कल्याण, विहाग, रागेश्वरी और मलकान जैसे रागों की रिकॉर्डिंग्स अब तक मेरी यादों में बसी हैं। अहीर भैरव, तोड़ी, ललित, बृंदावनी सारंग, जौनपुरी, भीमपलासी जैसे सुबह-दोपहर वाले राग और बहार-मल्हार जैसे मौसमी राग.. फेहरिस्त लंबी है।

बताते हैं कि बिस्मिल्ला खाँ ने तंत्रकारों की *बाज* की भी तालीम ली थी। तंत्रकार एक जटिल समय चक्र के आधार पर राग की संरचना में सघन संशोधन पर आश्रित रहते थे जिसमें केंद्रीय सुर बीच-बीच में उभरता था। खाँ साहब की शैली भी उनके अपने परिवेश में गायकों से काफी प्रभावित थी और विद्याधरी बाई, रसूलन बाई और उनकी बहन बतूलन बाई, जिन्हें लोग भुला चुके हैं, बड़ी मोटी बाई और सिद्धेश्वरी बाई जैसे अपने जमाने के महान तुमरी गायकों की समृद्ध शैली को उन्होंने खूब अपनाया था।

तुमरी के साथ सहज रिश्ता

बिस्मिल्ला खाँ मूलतः स्त्री-सुलभ तुमरी के आंतरिक क्रियाविधान को समझ चुके थे और उसके सबसे चित्ताकर्षक व कठिन पहलुओं को उन्होंने अपने शहनाई वादन में समो लिया था। जब वे किसी राग

शेष पृष्ठ 12 पर.....

भाजपा – दी पार्टी विद ए डिफरेंस ? ?!

डॉ. योगेश भटनागर

भाजपा शुरू से ही भारतीय लोकतंत्र और संविधान में विश्वास न रखने वाली, अल्पसंख्यक विरोधी और सांप्रदायिकता फैलाने वाली पार्टी रही है। केंद्र में सत्ता खोने के बाद आज भाजपा पिछले दो सालों से, दिशाहीन, अनुशासन विहीन, चरित्रहीन और विचारधारा विहीन होती जा रही है। अटल बिहारी वाजपेयी अपनी आदत के मुताबिक अपने हर बयान से अगले दिन मुकर जाते हैं। आडवाणी भी इसी आदत के शिकार हो गये हैं, जसवन्त सिंह इस भाजपा नामक मुकरिया परिवार के नये सदस्य हैं। 6 साल सत्ता में ही एनडीए सरकार को और इसमें खुद विदेश मंत्री रहे जसवन्त सिंह को इस जासूस के देशद्रोह पर कोई कार्यवाई करने की ज़रूरत महसूस नहीं हुई। और जब जासूस देश छोड़कर (बकौल जसवन्त सिंह) चला गया तो इन्हें उसका नाम उजागर करने का ख्याल आया। और आखिर में अपनी कही बात से मुकर गये।

आरएसएस द्वारा नियुक्त अध्यक्ष राजनाथ सिंह को पार्टी के दूसरी कतार के नेता अध्यक्ष मानते ही नहीं। राजनाथ सिंह पार्टी पर आये किसी भी संकट से निपटने में नाकाम दिखाई दे रहे हैं। थकी हारी पार्टी को कोई नया कार्यक्रम नहीं दे पा रहे हैं। भारत सुरक्षा यात्रा से पार्टी में कोई जान नहीं डाल पाये। विधानसभा चुनावों में पार्टी कहीं कुछ हासिल नहीं कर पायी। रायबरेली में विनय कटियार जैसे कट्टरपंथी नेता की जमानत जब्त हो गयी। आरक्षण पर भाजपा के बड़े नेता कोई स्टैंड लेते नहीं दिखाई दिये हालांकि आरक्षण विरोधी आंदोलन को भाजपा का हर तरह से समर्थन था। जसवंत सिंह की 'कॉल आफ ऑनर' को पार्टी 'ऑनर' नहीं कर पायी और सारे देश के सामने बेइज्जत और शर्मसार हुई।

भाजपा एक अलोकतांत्रिक और संविधान में विश्वास न करने वाली पार्टी है। इसका सबूत है अलग-अलग मुद्दों पर राष्ट्रपति भवन की इसकी यात्राएँ और हर मुद्दे पर राष्ट्रपति से गुहार। भाजपा-राजग ने लाभ के पद के विधेयक को जस का तस दोबारा राष्ट्रपति को भेजने के सरकार के फ़ैसले को राष्ट्रपति से मिलकर अनुच्छेद 143 के तहत सुप्रीम कोर्ट से सलाह लेने की विनती की। जैसा कि हमेशा होता आया है कि भाजपा अपने कहे से मुकर जाया करती है इस बार भी जब यूपीए के नेता विपक्ष के नेता आडवाणी, जसवंत सिंह, वी.के. मल्होत्रा, अरुण जेटली और सुषमा स्वराज से मिले तो भाजपा ने अपनी सहमति दिखाई पर अगली सुबह वाजपेयी, आडवाणी और फर्नांडीस समेत राजग का प्रतिनिधि मंडल राष्ट्रपति से मिलने जा पहुंचा। राष्ट्रपति ने इस प्रतिनिधि मंडल से मिलकर ये साबित कर दिया कि वो अपने आप को संवैधानिक नियमों और परम्पराओं से ही नहीं पर अपने आपको संसद से ऊपर मानते हैं। भारत-अमेरिका परमाणु करार के बारे में भाजपा से ज्ञापन मंजूर करना भी ऊपर कही बात की पुष्टि करता है। वैसे जिस तरह राष्ट्रपति भाजपा-राजग की राष्ट्रपति भवन की यात्राओं और ज्ञापनों को पिछले दो सालों से स्वीकार कर रहे हैं और चाहे जहां राय के लिये भेज रहे हैं इससे साबित हो रहा है कि वे खुद भारत के लोकतंत्र में विश्वास नहीं रखते। वैसे ये कोई ताज्जुब की बात नहीं है। आखिर भाजपा-राजग ने उन्हें नियुक्त किया है।

भाजपा और उसकी विचारधारा से सहमत होना और भाजपा की विचारधारा को आगे बढ़ाना एक तरह से उनकी विचारधारात्मक प्रतिबद्धता दिखाता है। 52वें राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार सम्मेलन में भी राष्ट्रपति का आरएसएस के नेता नानाजी देशमुख के चित्रकूट में ग्रामीण पुर्नगठन योजना की खुलकर तारीफ करना इस बात की पुष्टि करता नज़र आता है। साथ ही ये भी कि उनका ये कहना कि राजनीति में वो विश्वास नहीं रखते, सरासर गलत दिखाई पड़ रहा है। राष्ट्रपति का ये न पूछना कि भाजपा राजग ने पहले दिन लोकसभा में कामकाज क्यों नहीं होने दिया अगर वो ज्ञापन लेकर आ रहे थे, अपने आप में एक इशारा करता है।

भाजपा शायद नहीं जानती कि उसका राष्ट्रपति को ये सुझाव कि वे सुप्रीम कोर्ट का मत माँगें संविधान की धारा 74 (1) के खिलाफ़ है। राष्ट्रपति कैबिनेट की सलाह के बिना कोई फ़ैसला ले ही नहीं सकता। राष्ट्रपति का 'लाभ के पद' का बिल अपने मशवरे के साथ वापिस भेजना भी धारा 111 का उल्लंघन था। राष्ट्रपति कोई संवैधानिक रेफरी नहीं हैं जो मंत्रिमंडल या लोक सभा या राज्य सभा को 'लाल' 'पीला' कार्ड दिखाकर उसके काम को रोक सकें। जब कि भाजपा की राष्ट्रपति भवन की सारी यात्राएँ इस उद्देश्य से प्रेरित रही हैं कि राष्ट्रपति मंत्रिमंडल की सलाह न मानें और दोनों सदन उनकी (राष्ट्रपति) मर्जी से काम करें। इस यात्रा का उद्देश्य भी ये बताना था कि राष्ट्रपति कैबिनेट की सलाह ना मानें। इस तरह राष्ट्रपति भाजपा-राजग से मिलने के बाद भाजपा की राजनीति को समर्थन देते नज़र आये। परम्परा के मुताबिक राष्ट्रपति से मिलने वाले अपना काम बता कर उनसे मिलने का समय माँगते हैं पर पिछले ढाई सालों में राष्ट्रपति ने भाजपा-राजग के संदर्भ में इस परम्परा को तोड़ दिया है जो ऊपर कही बात साबित करता है कि राष्ट्रपति सांप्रदायिक और तानाशाही पार्टी की राजनीति करते नज़र आ रहे हैं और ये दिखाने की कोशिश कर रहे हैं कि राष्ट्रपति भवन एक सत्ता का प्रतिद्वंद्वी केंद्र (राईवल सेन्टर) बन गया है जो कि पूरी तरह से असंवैधानिक है।

भाजपा और सांप्रदायिकता

अपने को पार्टी विद ए डिफरेंस कहने वाली भाजपा एक तरफ़ लोकतंत्र और संविधान का लगातार अपमान कर रही है, दूसरी तरफ़ स्वशासित राज्यों में सांप्रदायिकता फैला रही है। दलितों और अल्पसंख्यकों (मुसलमान और ईसाईयों) पर हमले सरकारी समर्थन से जारी हैं।

गुजरात

भाजपा-विहिप और बजरंग दल और शिवसेना के कार्यकर्ताओं ने जुलाई महीने में मुम्बई में हुए बम विस्फोटों के खिलाफ़ सूत्र में स्थित एक मस्जिद में हंगामा कर दिया। उन्होंने पाकिस्तान को जिम्मेदार ठहरा कर आतंकवाद का पुतला फूँका। शाम के वक्त की नमाज़ के बाद भगवा कार्यकर्ता मस्जिद में घुस गये और तोड़फोड़ मचानी शुरू की। उन्होंने वहां ट्यूबलाइट्स और पंखों को नुकसान पहुंचाया। मस्जिद के आसपास मौजूद पुलिस कर्मियों में से कुछ तो भाग गये और जो रह गये थे वो चुपचाप खड़े तमाशा देखते रहे, दंगाईयों को रोकने की कोई कोशिश नहीं की।

भाजपा गुजरात में खासकर अल्पसंख्यक विरोधी नीति खुले तौर पर अपना रही है। गुजरात में पंचमहल, साबरकांठा और बनासकांठा जिलों में मुस्लिम मजदूरों और दिहाड़ी मजदूरों और मिस्त्रियों को राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना के अंतर्गत दिये जाने वाले 'जॉब कार्ड' को पंजीकृत नहीं किया जा रहा। मतलब दूसरे लफ्जों में अब आर्थिक नरसंहार किया जा रहा है। इन क्षेत्रों में सांप्रदायिक दंगों में अनेक मुस्लिम मारे जा चुके हैं काफी यहां से भाग गये हैं और जो बचे हैं उन्हें रोजगार नहीं दिया जा रहा है।

राजस्थान

भाजपा शासित राज्य राजस्थान में दलितों पर हमले बढ़ते जा रहे हैं। मई-जून के एक ही महीने में दलितों पर अत्याचारों के कई मामले सामने आये हैं जिसमें पुलिस और प्रशासन मूक दर्शक बने देखते रहे मतलब अत्याचारियों को पुलिस और प्रशासन का समर्थन प्राप्त था। चोमो ज़िले में एक 55 साल की स्कूल अध्यापिका की पुलिस थाने में मौत हो गयी। उसे थाने में पूछताछ के लिये बुलाया गया था। उसके बयान पर पुलिस ने अंगूठे के निशान लिये। एक दलित की शादी के जुलूस में दूल्हे को घोड़ी से उतार दिया और बरातियों पर हमले किये। चुहलट गांव में कुछ अत्याचारियों ने दलितों की 'निकासी' (बिदा के बाद वापिस जा रही बारात) पर हमले किये। पुलिस यहां भी चुप देखती रही। जालोर ज़िले में एक कालेज के प्रिंसिपल और कुछ टीचरों ने मिल कर दलित टुलधाराम मेधवाल के पाँच बेटों के साथ दुर्व्यवहार किया, उनकी बेईज्जती की। यहां भी प्रशासन खामोश देखता रहा। इन सब मामलों में पुलिस और प्रशासन खामोश देखता रहा। मतलब समर्थन था।

मध्य प्रदेश

जून के महीने में भोपाल में बजरंग दल के कार्यकर्ताओं ने एक प्रेस कांफ्रेंस ज़बरदस्ती रोक दी। खरगोन ज़िले के भगवानपुरा के नाड़िया गाँव में खरगोन से भाजपा के विधायक डल सिंह सोलंकी के आदमियों ने दो ईसाई महिलाओं के साथ बलात्कार किया। यह खबर देने के लिये प्रेस कांफ्रेंस बुलायी गयी थी। इस प्रेस कांफ्रेंस में मध्य प्रदेश माइनोरिटी कमीशन का एक सदस्य और जानी मानी ईसाई नेता और कमीशन की सदस्य इंद्रा आयंगर उन महिलाओं के साथ मौजूद थी। इंद्रा आयंगर ने कहा कि सोलंकी ईसाईयों को लगातार धमका रहे हैं और उन्हें धर्मान्तरण के झूठे मामलों में फंसाने की धमकी दे रहे हैं। पुलिस बजाय बलात्कारियों के खिलाफ केस दर्ज करने के पीड़ित महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार कर रही है। पीड़ित महिलाओं के परिवारों को भी धमकियां दी जा रही हैं। प्रेस कांफ्रेंस में बजरंग दल के कार्यकर्ताओं ने इंद्रा आयंगर को धमकी दी कि अगर उन्होंने बलात्कार और मारपीट के मामले में किसी भी हिंदू संगठन का नाम लिया तो उनके लिये अच्छा नहीं होगा।

भोपाल में बजरंग दल के कार्यकर्ता, रेवरेंट फ्रांसिस के घर में जहां एक प्रार्थना सभा हो रही थी, जबरदस्ती घुस आये और जो प्रार्थना

सभा में भाग ले रहे थे उन्हें जमकर पीटा। उनका आरोप था कि वो ईसाई धर्म में धर्मान्तरण करवा रहे थे। 18 ईसाईयों को पुलिस स्टेशन घसीट कर ले गये। ये साबित हो जाने के बाद भी कि इस प्रार्थना सभा में कोई धर्मान्तरण नहीं हुआ, प्रशासन ने बजरंग दल के कार्यकर्ताओं के खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं की। भोपाल के आर्कबिशप डॉ. पास्कल टोपनो का कहना है कि जबलपुर, इंदौर, धार, झबुआ और रतलाम में हालात खराब हैं। जबलपुर में यह कहकर कि वो धर्मान्तरण करवा रहे थे, एक महीने में ईसाईयों पर 20 झूठे केस दर्ज किये गये। ये एक सच है कि जनवरी 2004 में झबुआ में ईसाईयों के खिलाफ हुए सांप्रदायिक दंगों में हिंदू संगठनों का एक भी कार्यकर्ता आज तक नहीं पकड़ा गया। बल्कि 16 ईसाई ही गिरफ्तार किये गये। मतलब प्रशासन और पुलिस भी बजरंग दल और ऐसे ही हिंदू संगठनों का साथ दे रहे हैं। खरगोन के बजरंग दल के कन्वीनर देवन्द्र रावत का ये बयान कि 'हम अब अपने स्तर पर धर्मान्तरण के विरोध में कैम्पेन करेंगे और इसके लिये कोई भी कुर्बानी देने और लेने के लिये तैयार हैं' – प्रशासन और पुलिस का समर्थन दिखाता है। आज मध्य प्रदेश में पूरा ईसाई समाज डर और खौफ के माहौल में रह रहा है क्योंकि संरक्षण देने वाले ही उनके खिलाफ हो गये हैं। मुसलमानों और ईसाईयों के खिलाफ रहना आरएसएस और भाजपा की नीति है।

भाजपा शासित राज्यों में ईसाई अल्पसंख्यकों पर बढ़ते अत्याचारों के लिये राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग ने बजरंग दल, आरएसएस और धर्मदल जैसे हिंदुत्ववादी संगठनों को जिम्मेवार ठहराते हुए यूपीए सरकार द्वारा हस्तक्षेप करने की मांग की है।

आयोग ने कहा कि मध्य प्रदेश के झबुआ, भोपाल, जबलपुर, बेटुल, होशंगाबाद, शिवनी और धार तथा छत्तीसगढ़ में जशपुर, रायपुर और बिलासपुर जिलों में निष्पक्ष पुलिस और प्रशासनिक अधिकारियों की नियुक्ति की जानी चाहिये। आयोग ने अपनी रिपोर्ट में कहा है कि भाजपा के सहयोगी हिंदुत्ववादी संगठन धर्म परिवर्तन के नाम पर ईसाईयों पर अत्याचार कर रहे हैं। वो उनकी पिटाई कर रहे हैं और उन्हें परेशान कर रहे हैं। रिपोर्ट ने कहा कि पुलिस का सांप्रदायिकीकरण इस हद तक हो गया है कि मध्य प्रदेश के जबलपुर और खरगोन में ईसाईयों के खिलाफ धर्म परिवर्तन के मामले दर्ज किये जा रहे हैं। पुलिस और प्रशासन प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से हिंदुत्ववादी संगठनों के इस अभियान को समर्थन दे रहा है।

केन्द्र सरकार की संवैधानिक जिम्मेदारी है कि वो समाज का सांप्रदायिककरण रोके, ऐसे तत्वों पर, जो समाज में अल्पसंख्यक समुदायों के खिलाफ नफरत और हिंसा फैला रहे हैं, कानूनी कार्यवाही करे और धर्मनिरपेक्षता को बढ़ावा दे। कांग्रेस पार्टी, सभी धर्मनिरपेक्ष और वामपंथी ताकतों की जिम्मेदारी है कि भाजपा शासित राज्यों में सांप्रदायिक सरकार और प्रशासन के खिलाफ जनांदोलन खड़ा करें। पर केंद्र सरकार क्यों चुपचाप देख रही है? वो अपनी संवैधानिक जिम्मेदारी के प्रति खामोश क्यों हैं?

साथियों,

हम उम्मीद करते हैं कि आई.एस.डी. का न्यूज़लैटर 'समरथ' आपको नियमित रूप से मिल रहा है। हम चाहते हैं कि आप 'समरथ' पर अपनी आलोचना, प्रतिक्रियाएं और सुझाव भेजें वो चाहे विषयों के चयन पर हो या फिर भाषा और शैली को लेकर। साथ ही ये भी बताएँ कि आप किन और विषयों को 'समरथ' में जोड़ना चाहेंगे। ये हमें 'समरथ' को और भी उपयोगी बनाने में मदद करेगा। हमें आपके खतों का इंतज़ार रहेगा। सधन्यवाद।

आई.एस.डी.

सुलगते मैदान, धधकते पहाड़ — 3 क्या बोलिविया में समाजवाद संभव है ?

एजाज़ अहमद

एवो मोरालेस के चुने जाने के बाद आधिकारिक उद्घाटन हुआ और वे “पानी संघर्ष” का शहर कोचाकांबा जहाँ उनके ‘समाजवाद के लिए आंदोलन’ की स्थापना हुई; से अपने साधारण ला पाज़ में राष्ट्राध्यक्ष भवन में चले गये। “मैं घर से संपर्क में रहने के लिए हर महीने यहाँ लौटने की उम्मीद करता हूँ”, जाने से पहले उन्होंने कहा, “यहाँ के लोगों की मुझे ज़रूरत है ताकि वे बता सकें की मैं देश के सबसे ज़रूरतमंद की मदद करने का वादा निभा रहा हूँ कि नहीं।”

बोलीविया के तीसरे सबसे बड़े शहर कोचाकांबा के नज़दीक अर्ध-उष्णकटिबन्धी चीपारे प्रान्त पड़ता है। एवो बचपन में इस उच्चभूमि से तब प्रवासित हुये जब वहाँ की तीन खदानें बन्द कर दी गयीं और खनिकों की यूनियनें भंग कर दी गयीं और वे चरवाहे तथा कोका किसान बन गये। मज़दूरों के “पुनःकिसानीकरण” से उनके ट्रेड यूनियन के अनुभवों का पारंपरिक तरीके से गुज़ारा करने वाले किसानों से अभिसार हुआ जिनके सामुदायिक संगठन के अपने तौर-तरीके थे। इस अभिसार से सात फेडरेशन में सम्मिलित स्थानीय यूनियनों या सिंडीकेटो का तंत्र उपजा। मोरालेस इन्हीं यूनियनों के नेता के रूप में देश के शिखर पर पहुँचे और इतिहास फ़ैसला करेगा कि वे अपने मूल के प्रति कितने ईमानदार रहते हैं। यही वादा उन्होंने अपने उद्घाटन-भाषण में किया, “हम जनता की पानी जैसी ज़रूरतों का निजीकरण नहीं कर सकते हैं। हम अपने पानी के अधिकार, कोका बोने के अधिकार व प्राकृतिक संसाधनों पर अधिकारों के लिए संघर्ष कर रहे हैं। अपनी यूनियनों व आंदोलनों की उग्रता को नहीं बल्कि नवउदारवाद की उग्रता को खत्म करना हमारी ज़रूरत है।”

राजधानी में हुआ उद्घाटन समारोह अलग बात थी। इसके मुकाबले दूसरा ऐतिहासिक उद्घाटन था, जब बोलीविया व अमरीकी महाद्वीप के करीब 50,000 से ज़्यादा मूलनिवासी प्राचीन तीवानाकू शहर में एकत्र हुए और उन्हें “पॉवर ऑफ़ ऑरिजनल मेनडेट (मूल आदेश की शक्ति)” प्रदान की। पारंपरिक तौर से, इसका मतलब सत्ता, लेकिन साथ ही, सामाजिक न्याय व सबकी सुरक्षा को लागू करते हुये समतामूलक समाज की वचनबद्धता भी। आधुनिक शब्दावली में इसे रखते हुये इस पारंपरिक समारोह के एक प्रतिभागी ने कहा, “समाजवाद ही मूल आदेश है।”

फिर आती है मंत्रिमंडल की नियुक्तियाँ जिसने ‘द इकोनोमिस्ट’ को आग बबूला कर लिया। “इस मंत्रिमंडल के पास मोरालेस की भाँति सरकार चलाने का बहुत कम अनुभव है;”, इस संवेदनशील दैनिक ने काफ़ी सही टिप्पणी की थी। उदाहरण के लिए 39 वर्षीय कानून मंत्री कासीमीरा रोद्रीगेस को ही लीजिए जो कि बोलीवियाई मंत्रिमंडल में शामिल होने वाली पहली केचुआ इन्डियन हैं। इन्हें अपने गाँव से 13 साल की उम्र में कोचाबाम्बा शहर में इस वादे के साथ लाया गया था कि घरेलू नौकर के रूप में उन्हें रहने-खाने के साथ स्कूल जाने की सुविधाएँ भी दी जाएंगी। लेकिन, उन्हें घर पर ही महदूद रखा गया जहाँ काम की लम्बी अवधि के साथ-साथ उनसे

मालिकों द्वारा दुर्व्यवहार भी किया जाता था। इस तरह की शुरुआत करने वाला मोरालेस के मंत्रिमंडल में बैठने योग्य शायद ही हो पाती किसी महिला की बात तो छोड़िए।

वास्तव में यह एक प्रभावशाली शुरुआत है। लेकिन, क्या एक गरीब और आश्रित देश की अध्यक्षता संभालने वाले मोरालेस तमाम दबावों को झेल पायेंगे ? यह तो वक्त ही बतलायेगा।

मोरालेस के बोलीविया में जीतने के बाद लातीनी अमरीका में दो और चुनाव हुये हैं। महाद्वीप के एक छोर पर चीली और दूसरे छोर पर हायती। अपने इतिहास, अर्थव्यवस्था के आकार तथा विकास के स्तर पर भिन्न दोनों ही देश अपनी ही शैली में उजड़े हुये हैं।

चीलीएन विरोधाभास

चीली को आऊगूस्तो पिनोचे की सैनिक तानाशाही से मुक्त केवल 16 साल ही बीते हैं जो कि खुद 17 सालों तक वहाँ कायम रही जिसने वहाँ के वामपंथ को पुर्णतः नेस्तनाबूद कर देश को कठोर नवउदारवादी आर्थिक पुनःसंरचना का नमूना बना दिया। जब देश के दो प्रमुख दलों—क्रिश्चियन डेमोक्रेट व सोशियलिस्टों ने साथ मिलकर चीली की सेना व बुर्जुवा वर्ग साथ ही अमरीका व विश्व बैंक को आश्वासन दिया कि यहाँ का नवउदार ढाँचा नहीं पलटा जाएगा तब जाकर इस तानाशाही का अन्त हुआ। मज़दूर वर्ग द्वारा झेली गयी तबाही पर यदि एक नज़र डालें तो 1973 से पहले अर्थव्यवस्था की सरकार के दौरान मज़दूरों को सामाजिक उत्पादन से होने वाली आय का आधे से अधिक हिस्सा मिलता था जो कि पिनोचे की तानाशाही खत्म होने तक बमुश्किल 19 प्रतिशत रह गया। तांबा (चीली का मुख्य खनिज निर्यात) और उच्च कोटी के कृषि उत्पादों के दाम बढ़ने से पिछले कुछ वर्षों में राष्ट्रीय आय में काफ़ी बढ़ोतरी हुयी, लेकिन तथाकथित लचीले श्रम बाज़ार के फलस्वरूप श्रम की दरें तटस्थ रहीं। कंपनियाँ और कॉरपोरेशन थोड़े से नियमित मज़दूर रखकर मन चाहे मज़दूरों को शशमी—रोज़न्दारी या ठेके—पर रखने के लिए आज़ाद थी। किसी भी सामाजिक लाभ से वंचित इन्हें फौरन काम से निकाला जा सकता था। इस तरह की ठेकेदारी अब चीली में ऐसी प्रथा बन चुकी है कि सरकार द्वारा काम पर रखे गये लगभग आधे श्रमिक भी इसी श्रेणी में आते हैं।

सोशियलिस्ट उम्मीदवार मिचेल बाचेले का 53 प्रतिशत मतों से जीतना एक विरोधाभास है। वे लातीनी अमरीका की जनतांत्रिक तरीके से चुनी गयी पहली महिला राष्ट्राध्यक्ष हैं। ऐसे देश में जो इतना रुढ़िवादी है कि तलाक अभी भी यहाँ गैरकानूनी है, वहाँ वे तीन बच्चों की एकल माँ हैं और एक कैथोलिक बहुल राष्ट्र में खुद का अज्ञेयवादी होना स्वीकार करती हैं। अपने सामाजिक आयामों में यह चुनाव निश्चित रूप से महत्वपूर्ण है। इसके अलावा, उनके पिता, वायु सेनाध्यक्ष आल्बेर्तो बाचेले की मौत पिनोचे के कारागार में हुयी थी और वे खुद तानाशाही के शुरुआती दौर में भूमिगत लड़ाका थीं और युरोप निर्वासित होने से पहले कुछ समय वे पिनोचे के एक यातना शिविर, विल्या ग्रिमाल्दी में रहीं। अतः यहाँ पेचीदगी यह है कि, कई चीलीयाई सोशियलिस्टों, खासकर उच्च वर्गीय पृष्ठभूमि वाले जिन्होंने अपने कुछ

वर्ष यूरोपीय निर्वास में गुजारे हैं, वे यूरोप की दक्षिणपंथी सामाजिक जनतंत्रवाद से ठीक उस वक्त नज़दीक आये जब वे सामाजिक जनतंत्रवादी नवउदारवाद से अपनी शांति प्रक्रिया चला रहे थे। राष्ट्राध्यक्ष चुने जाने से पहले, मिचेल बाचेले अपने सोशियलिस्ट पूर्वगामी, रिकार्दो लोगास के मंत्रिमंडल में रक्षा मंत्री थीं। लागोस चीली में नवउदारवादी नीतियों के गहरे समर्थक थे यहाँ तक कि उन्होंने इंडियनों की पैतृक ज़मीन भी निजी हाथों में सौंपी, एक और तथ्य का यहाँ खुलासा करना चाहिए कि, उन्हीं की अध्यक्षता व मिचेल बाचेले की रक्षा मंत्री काल में चीली ने संयुक्त राष्ट्र के बेड़े में अपनी टुकड़ियाँ भेजी थीं जिसने हायती में तख्तापलट के बाद अमरीकी सेना की जगह ली। चीली की वे सैन्य टुकड़ियाँ अभी तक वहीं हैं।

नवउदारवादी नीतियों पर कुछ नहीं कहने के बावजूद बाचेले इसमें शामिल रही हैं और राष्ट्राध्यक्ष के रूप में वे क्या करती हैं यह इंतज़ार करने व देखने की बात है। वामपंथ के बड़े हिस्से ने उनसे दूरी बनाये रखी है। केवल अंत में ही बड़ी हिचक के साथ चीलीयाई कम्युनिस्ट पार्टी ने घोर दक्षिणपंथी अरबपति उम्मीदवार के खिलाफ़ उनकी उम्मीदवारी का समर्थन किया, साथ ही उन्होंने मज़दूर, मूलनिवासी व महिला अधिकारों पर अपनी माँगों की शर्त भी रखी। अपनी तरफ से बाचेले ने अमरीका द्वारा क्यूबा व वेनेजुएला के दानवीकरण से खुद को दूर रखा है और मोरालेस सरकार से मैत्रीपूर्ण संबंध रखने की इच्छा जाहिर की है। इस सब के बीच, बाचेले के चुनाव से चीली में, मेक्सिको की तर्ज़ में जहाँ विनसेन्ट फॉक्स की अमरीका की पिछलग्गू सरकार है, घोर दक्षिणपंथ को रोका गया है। लेकिन, वे “भलाई की धुरी” जैसा की मोरालेस क्यूबा, वेनेजुएला और बोलीविया को कहते हैं उसका भाग कतई नहीं है। उनकी पार्टी फिलहाल उसकी प्रतिष्ठा भी नहीं है जो कि कभी अख्येदे के जमाने में हुआ करती थी और अपने कार्यकाल में उन्होंने ऐसा कुछ नहीं किया है जिससे यह आभास हो कि वे नवउदार नीतियों को फेर लेंगी।

हायती, भूत तथा वर्तमान

हायती के चुनाव काफी तुलनीय है। यह देश अभी भी अमरीका द्वारा प्रायोजित व फ्रांस द्वारा समर्थित 2004 के तख्तापलट के असर से लड़खड़ा रहा है। हिसपान्योला द्वीप के आधे हिस्से में बसा, हायती एक छोटा सा देश है (बाकी आधे हिस्से में डोमीनीकन गणराज्य है)। पश्चिमी गोलार्ध का सबसे गरीब देश, विश्व का चौथा गरीब देश, 50 प्रतिशत साक्षर जनता में से तीन चौथाई एक डॉलर प्रतिदिन पर गुज़ारा करती है जबकि यहाँ के एक प्रतिशत लोगों के पास देश की 50 प्रतिशत संपत्ति पर कब्ज़ा है। मुक्ति धर्मविज्ञान के प्रति समर्पित एक कैथोलिक पुरोहित, ज्यॉ बरट्रेन आरीस्तीदे हायती के 200 वर्षों के इतिहास के पहले चुने गये राष्ट्राध्यक्ष थे, जिन्हें ‘द न्यूयॉर्क’ टाइम्स ने बड़े तिरस्कार से “वामपंथी राष्ट्रवादी” घोषित किया था। वे सन् 2000 में 90 प्रतिशत से ज़्यादा मतों से पुनः चुने गये जिसमें देहाती इलाके से 65 प्रतिशत व राजधानी से लगभग 100 प्रतिशत लोगों ने भाग लिया था। विपक्ष के खिलाफ़ जो पैसों व हिंसा के तरीकों में ताकतवर है लेकिन जिनकी जनता के बीच कोई पकड़ नहीं है, उन्हें कंगाल जनता के बहुमत ने चुना था। सन् 2000 में हुए चुनावों ने दर्शाया की विपक्ष के पास हायती की कुल 8 प्रतिशत जनता का समर्थन हासिल था।

लेकिन अमरीका इससे भयभीत नहीं हुआ जो हायती के प्रबुद्ध वर्ग के साथ खड़ा रहा जिनकी हिंसा का आरीस्तीदे विरोध कर रहे थे। अतः आरीस्तीदे के 1994 में सत्ता में आने के बाद हायती से भागे

हुये पूर्व सैनिक एवं पुलिस अधिकारियों, पेशेवर हत्यारे व अपराधी गुटों के हथियारबंद दस्तों का अमरीका ने तुरंत पोषण करना शुरू कर दिया। अमरीका की मदद से ये दस्ते पड़ोस के डोमीनीकन गणराज्य व खुद अमरीका के मियामी में पुनः एकत्र हुये। ठीक उसी तरह जैसे नीकारागुआ की समाजवादी सांदानिस्ता सरकार के खिलाफ़ प्रतिक्रांतिकारी युद्ध में अमरीका ने एल साल्वादोर में आतंकवादियों “कोन्ट्रास” को एकत्र कर ट्रेनिंग व मदद करी थी। यह आतंकवादी दस्ते अत्याधुनिक अमरीकी हथियारों से लैस फ़रवरी 2004 की शुरुआत में हायती में पहुँच गये और पश्चिमी मीडिया ने इन्हें “विद्रोही” व “बागी” की संज्ञा दी मानों कि वे विशुद्ध ज़मीनी विद्रोह से उपजे हों।

जैसे ही इन दस्तों ने शहर दर शहर आतंक फैलाना शुरू किया, अमरीका ने हायती के तट पर “सुरक्षा” प्रदान करने के बहाने तीन जहाजों में अपने 2,000 नौसैनिक तैनात कर दिये। हायती की पुरानी औपनिवेशिक ताकत फ्रांस, जिसने अमरीका के इराक पर हमले का विरोध कर उसे नाराज़ कर दिया था अब उसने परम साम्राज्यवादी ताकत से संबंध सुधारते हुये अमरीका के हायती पर कब्जे का मुख़र समर्थन किया और “सुरक्षा” प्रदान करने के नाम पर ही उसने भी अपनी सैन्य टुकड़ी वहाँ भेजी। कनाडा, जिसने इराक पर हमले से खुद को दूर रखा था लेकिन हायती में क्योंकि उसके भी आर्थिक हित मौजूद थे, उसने भी वहाँ अपने सैन्य दस्ते भेजे और “सबसे क़रीबी सहयोगी” का जो स्थान टोनी ब्लेयर के इंग्लैंड को इराक पर हासिल था वही स्थान कनाडा ने यहाँ हासिल किया। संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद ने, जैसे अमरीका द्वारा इराक पर गैरकानूनी कब्जे को कानूनी जामा पहनाते हुये संयुक्त राष्ट्र की वहाँ एक बड़ी भूमिका निर्धारित की और उसी तरह हायती में अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा सेना का अनुमोदन किया। इतना सब मात्र तीन सप्ताह में ही हो गया।

आरीस्तीदे के असुरक्षित होने का कारण विडम्बनापूर्ण है। 1990 में भारी मतों से जीते जाने के सात महीनों के अंदर ही उनकी सरकार का पूर्वगामी दूवालीएर व उसके पुत्र, पापा डॉक की हत्यारी तानाशाही के विश्वस्त सैन्य अधिकारियों द्वारा तख्ता पलट कर दिया गया। 1994 में सत्ता में पुनः वापसी पर आरीस्तीदे ने उस सेना को भंग कर दिया और उसके साथ शामिल होने वाले पुलिस अधिकारियों को बर्खास्त कर दिया तथा कानून व अन्य कार्यों के लिए नये पुलिस बल का गठन किया। यह क़दम भविष्य में ऐसे किसी भी तरह के सैन्य कब्जे को रोकने के साथ-साथ आरीस्तीदे की हायती में कम से कम हिंसात्मक तरीके से नागरिक समाज के गठन के प्रति उनकी गहरी आध्यात्मिक भावना से प्रेरित था। अमरीका द्वारा “विद्रोही” करार दिये गये दस्तों का नेतृत्व यही 1990-94 की सैन्य तानाशाही की असंतुष्ट सेना व पुलिस के पूर्व अधिकारियों के साथ हत्यारे गुटों के नेता कर रहे थे। राष्ट्राध्यक्ष आरीस्तीदे के पास जो पुलिस बल था उसकी तुलना इन पूर्व अधिकारों व उनके गिरोह से नहीं की जा सकती है जिनके पास अब अमरीका से मिले हथियार व अन्य सुविधाएँ मुहय्या थीं।

जब अमरीका समर्थित “विद्रोहियों” ने आरीस्तीदे के आवास को घेर लिया, तो अमरीकी राजदूत ने आरीस्तीदे से माँग की, कि वे अपने पद से इस्तीफ़ा दे दें। आरीस्तीदे के इनकार करने पर उन्हें अगुवा कर, हवाई जहाज़ में बिठा अटलांटिक पार रिपब्लिक ऑफ़ सेंट्रल अफ्रीका भेज दिया गया। वहाँ किसी तरह उनके हाथ एक मोबाईल फ़ोन लगा जिससे उन्होंने अमरीका में अपने कुछ दोस्तों से बात की और अंततः एक हायती रेडियो ऑपरटर द्वारा क्रैओल भाषा में “हायती की जनता व दुनिया के नाम” अपना भावपूर्ण संदेश प्रसारित किया।

संदेश की शुरुआत और अंत में तोसेन्त ल'ओवरतूर का उल्लेख किया गया था, जो कि एक पौराणिक अश्वेत गुलाम थे जिन्होंने 200 वर्ष पहले क्रांतिकारी आंदोलन को संगठित करते हुये हायती से औपनिवेशिक सत्ता को उखाड़ फेंका था।

“कौम के महानायक तोसान्त ल'ओवरतूर की छाया तले मैं घोषणा करता हूँ कि मेरे तख्तापलट से इन लोगों ने शांति के पेड़ को उखाड़ फेंका है लेकिन, यह फिर उग आएगा क्योंकि इसकी जड़ें हैं ल'ओवरतूर...। 28 फरवरी 2004 की रात में तख्तापलट (कू-दे-तात) किया गया। इसे भूराजनैतिक (जिओपोलिटिकल) अपहरण भी कहा जा सकता है। मैं साफ-साफ कहता हूँ कि यह कूटनीति के भेष में आतंकवाद है...। संविधान हायती की जिंदगी का स्रोत है। यह जीवन के प्रति आश्वासन है। आइये हम सब एक साथ संविधान के प्रति प्रतिबद्ध हों ताकि जीवन आगे चले...।”

जॉर्ज बुश द्विज (बार्नएगेन) क्रिश्चियन है और उनके चुनाव के पीछे ऐवेन्जीकल चर्च द्वारा चलाई गयी मुहिम का हाथ है। फिर भी वे दुनिया में मात्र एक अभिषिक्त पादरी की सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिए समर्पित हैं। बुश दुनिया में जनतंत्र फैलाने का दावा करते हैं लेकिन उनके राजदूत लगभग 90 प्रतिशत मतों से जीत गये राष्ट्राध्यक्ष के तख्तापलट व अपहरण को संचालित करते हैं। दूसरी तरफ अमरीका, फ्रांस और कनाडा सरीखे 'पश्चिमी' जनतंत्र के मार्गदर्शक “विद्रोहियों” की सहायता के लिए अपनी सेना भेजते हैं। आरीस्तीदे राष्ट्राध्यक्ष की हैसियत से अपने आधीन सेना को भंग करते हैं ताकि पश्चिमी ताकतों की पिछलग्गु निर्मम तानाशाही के बाद देश के पुर्ननिर्माण की तरफ बढ़ने से पहले हिंसा के उपकरणों का परित्याग किया जा सके। अमरीका ठीक इन्हीं पूर्ववर्ती तानाशाही के प्रति वफादार पूर्व सैन्य अधिकारियों तथा हत्यारों को चुनता है और हथियारों से लैस करता है, जो बाद में हिंसा फैलाते हैं और एक संवैधानिक सरकार को उखाड़ फेंकते हैं जिसकी अपनी कोई सेना नहीं है। बलपूर्वक तख्तापलट व दूसरे महाद्वीप में धकेल दिये जाने पर भी, आरीस्तीदे अपनी जनता से संविधान के पक्ष में खड़ा होने व शांतिपूर्वक संघर्ष करने की माँग करते हैं। आखिर में, यह ध्यान देने की बात है कि आरीस्तीदे ठीक उसी तरह ल'ओवरतूर की स्मृति का आह्वान करते हैं जैसा कि कास्त्रो खोसे मार्ती का या चावेज़ बोलीवार का आह्वान करते हैं। ये वो महान नाम हैं जो लातीनी अमरीका तथा कैरीबीया की मुक्ति के प्रतीक बन चुके हैं, बन चुके हैं प्रतीक उस कार्य के जो अभी तक अधूरा ही पड़ा है और अगर आरीस्तीदे उस हायती के संदर्भ में “कौम” की बात करते हैं, जिस छोटे से देश में अफ्रीकी गुलामों के वंशज बसते हैं जिन्हें फ्रांसीसी व अंग्रेजी-अमरीकी सेना ने नष्ट कर कब्जा कर रखा है, तो लातीनी अमरीका के लगभग हर देश में “मूलनिवासी” के अधिकारों की माँग मुखर हो रही है – उपनिवेशकों के वंशजों या उच्च वर्गों की ताकत के खिलाफ इस महाद्वीप के मूलनिवासियों के अधिकारों की माँग।

‘द न्यूयॉर्क टाइम्स’ द्वारा आरीस्तीदे का “वामपंथी राष्ट्रवादी” के रूप में चित्रण पूर्णतः सही है। मुक्ति धर्मविज्ञान का उन पर काफ़ी गहरा प्रभाव है और ना सिर्फ हायती की गरीब जनता से बल्कि यूनियनों के कार्यकर्ताओं तथा प्रगतिशील बुद्धिजीवियों से भी उनके घनिष्ठ संपर्क हैं। दूसरी तरफ हायती का अमरीका के लिए गहरा भूराजनैतिक महत्व है। एक ऐसा द्वीप राज्य जो क्यूबा व वेनेजुएला से नज़दीक, लगभग बराबर की दूरी पर है। ऐतिहासिक रूप से इस पर काफ़ी अमीर अनुयायी-विशिष्ट वर्ग का शासन रहा है, जहाँ

पश्चिमी गोलाद्ध की न्यूनतम मजदूरी की दरें सुनिश्चित थी। पश्चिमी कॉरपोरेशनों ने यहाँ पर बागबानी व स्वेटशॉप द्वारा बहुत लाभ कमाया है साथ ही हायती का इस्तेमाल पश्चिमी पर्यटन व व्यभिचार के लिए भी होता रहा है।

अतः आरीस्तीदे को तार्किक रूप से दो बार सत्ता से हटाया गया, 1991 में और फिर 2004 में। 1991 के सत्तापलट के बाद लगभग 3,000 प्रगतिशील कार्यकर्ताओं तथा यूनियन नेताओं की हत्या की गयी। 2004 के सत्तापलट के बाद अमरीकी/फ्रांसीसी/केनेडीयाई सैन्य दस्तों ने एक अनुयायी सत्ता की नियुक्ति कर सत्ता फिर उस संयुक्त राष्ट्र की सेना को सौंप दी जिसमें लातीनी अमरीकी देशों के सैन्य दस्ते थे खासतौर पर लूला के ब्राज़ील साथ ही ‘समाजवादी’ चीली के। लेकिन, इतना सब होने पर भी वे जनविद्रोह को रोक नहीं पाये। जनता लगातार संघर्ष करती रही और बराबर चुनावों की माँग करती रही।

बागी जनता

हायती में हुये हालिया चुनावों को इसी संदर्भ में देखा जाना चाहिए। इसका कम से कम एक पक्ष बोलीविया के चुनावों की याद ताज़ा करता है। बोलीविया की तरह हायती में भी जीतने वाले उम्मीदवार को 50 प्रतिशत मत पाने होते हैं चाहे उसके प्रतिद्वंद्वी को कितने भी मत मिले। अन्यथा, पहले दो उम्मीदवारों के बीच पुनः चुनाव होता है। इस मामले में, जब बहुत जल्द ही यह साफ हो गया कि, दूसरे विरोधी उम्मीदवार को 12 प्रतिशत से ज़्यादा मत नहीं मिले हैं तब भी 16 फरवरी तक नतीजों की घोषणा नहीं की गयी। बहाना यह दिया गया कि अभी तक सभी मतों की गणना नहीं हो पायी है और पहले स्थान पर चलने वाले रेने प्रिवाल को जिन्हें आरीस्तीदे का समर्थन प्राप्त था, अभी तक 50 प्रतिशत मत नहीं मिले हैं। आरीस्तीदे के हज़ारों समर्थकों करीब 10 प्रतिशत मतदाताओं को मताधिकार से वंचित कर दिया गया था। अब मतगणना में और भी धांधली से आशंकित जनसमूह सप्ताह भर इंतज़ार करने के बाद सड़कों पर उतर आया और निष्पक्ष मतगणना की माँग की। अस्थायी चुनाव समिति की अव्यवस्था से साफ झलकता था कि, प्रिवाल बहुमत से विजयी हो चुके थे लेकिन समिति इसकी घोषणा करने से डर रही थी। संक्षेप में, तमाम घरेलू व विदेशी जोड़-तोड़ व डराने-धमकाने के बावजूद जनता पुनः विजयी हुयी थी। जनता के दबाव में आके जिन्होंने चुनाव समिति से माँग की कि, वे कम से कम अपने ही बनाये गये नियमों के प्रति थोड़ा सा ईमानदार रहें, इससे चुनाव प्रक्रिया का संचालन कर रहे विदेशी उच्चधिकारियों में भय व्याप्त हो गया और फिर चुनाव समिति के सदस्यों तथा इन उच्चधिकारियों के बीच जल्दी ही बंद दरवाजे में बैठक हुयी जिसके बाद घोषणा की गयी की उन्होंने गणना की प्रक्रिया बदल दी थी और स्वीकार किया कि प्रिवाल पहले ही चक्र में विजित हो चुके थे। बुरी स्थिति को बेहतर बनाने हेतू कोनदोलीसा राइस ने सुदूर वाशिंगटन से घोषणा की: “हम प्रिवाल सरकार के साथ काम करेंगे।” चावेज़ ने अपनी तरफ से प्रिवाल को बधाई दी और कहा कि, हायती भी उनके कैरीबियाई देशों को रियायती दरों पर तेल दिये जाने के कार्यक्रम में शामिल हो सकता है और प्रिवाल को उन्होंने वेनेजुएला आमंत्रित किया; बदले में प्रेवाल ने भी चावेज़ को हायती में आमंत्रित किया। यहाँ हम समाजवाद के पुनः फलने की नहीं बल्कि उस जनता की बात कर रहे हैं जिसने झुकने से इनकार कर दिया। गुलामियों के इतिहास से बर्बाद, सदियों की लुटेरी तानाशाहियाँ, विदेशी हस्तक्षेप, साक्षरता व स्वास्थ्य से महरूम, तख्तापलट व हत्यारों, तथा लगभग

दो दशकों की प्रान्तीय हलचल से बेहाल हायती दुनिया का सबसे गरीब कोना है। अभी भी यहाँ की ज़मीन पर विदेशी सेनाएं हैं, शासक वर्ग के पास अर्धसैनिक बल और पार्श्व में अमरीका द्वारा लैस किये गये “विद्रोही” मौजूद हैं। स्थिति इतनी गंभीर है कि, नये राष्ट्रध्यक्ष फिलहाल आरीस्तीदे को निर्वासन से ना तो वापस बुला सकते हैं और ना ही दखलबाज़ों व लुटेरों से स्वतंत्र कोई ढांचागत बदलाव कर सकते हैं।

एक राजनैतिक कल्पना

तख़्तापलट, तानाशाही व हत्याओं की वजह से सुसंगत राजनीति कैसे असंभव हो जाती है, कैसे बाधित हो रही है इसके लिये कोई हायती को ही देख सकता है। पहला है जनतंत्र के प्रति निश्चित वचनबद्धता। बोलीविया की भाँति हालांकि उससे कम संगठित तथा अव्यवस्थित, बागी जनता अपनी इच्छा से चुने हुये नेताओं को पुनः सत्ता में लाने के लक्ष्य को लेकर लगातार सड़कों पर है। संक्षेप में उस तरह के जनतंत्र के प्रति वचनबद्धता जिसकी शिक्षा तो बुश देते हैं लेकिन व्यवहार में नहीं लाते। अर्जेंटीना व इक्वादोर सहित यदि प्रक्रिया कई देशों में दोहरायी गयी है जहाँ जनता ने बगावत कर बार-बार राष्ट्रध्यक्षों को पदच्युत किया है तथा उनके उत्तराधिकारियों को चेतया है कि यदि वे कम से कम अपनी कुछ नीतियों को जनइच्छा के अनुसार नहीं मोड़ेंगे तो उन्हें भी जाना होगा। फर्क यह है कि इन देशों में हायती के मुकाबले जन विरोध ज़्यादा संगठित व अपने उद्देश्यों को लेकर ज़्यादा साफ़ हैं तथा नवउदारवादी एजेंडे के खिलाफ़ हैं। अर्जेंटीना में इसी तर्ज़ पर तीन राष्ट्रध्यक्ष आये और गये। नेस्तोर किर्चनेर सिर्फ़ इसीलिए पद पर बने रहे और काफ़ी लोकप्रिय हुये क्योंकि उन्होंने अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के मॉडल को नकारते हुये कर्ज़ अदायगी का स्थगन किया और बकाएदारों को दो-तिहाई कर्ज़ छोड़ देने को कहा साथ ही चावेज़ से नज़दीकी बढ़ाई जिन्होंने अर्जेंटीना को एक मिलियन डॉलर उधार दिये। एक्वादोर में, लूसीओ गुतियेरेस उन्हीं वादों पर चुने गये जो लूला ने भी किये थे। बाद में, खुद को बुश का मित्र बताते हुये उन वादों को तोड़ दिया। फिर जन विरोध के सामने उन्हें हेलीकॉप्टर से राष्ट्रध्यक्ष आवास से भागना पड़ा। उनके उत्तराधिकारी अलफ़्रेदो पलासीओ को अपने गृह मंत्री मैनुएल गनदारा द्वारा कहलाना पड़ा कि, अमरीका के साथ मुक्त व्यापार समझौते पर तमाम बातचीत स्थगित कर दी गयी है, तमाम भावी खनन व तेल के ठेके पुनः विचार किये जायेंगे तथा एक्वादोर अमरीका द्वारा प्रायोजित पड़ोसी देशों में सैन्य कार्यवाही के कोलम्बिया प्लान से खुद को अलग रखेगा आदि, आदी।

चावेज़ पर भी अब नैतिक ज़िम्मेदारी पड़ती है, जिन्होंने खुद तख़्ता पलट किया है और अपने खिलाफ़ तख़्तापलट को झेला है, जिनको एक ज़बर्दस्त जन आंदोलन का समर्थन प्राप्त है और बार-बार चुनाव व जनमत संग्रह में जीत दर्ज की है, जिसकी निष्पक्षता को अमरीका का कार्टर सेन्टर भी स्वीकारता है। बोलीविया में भी, जहाँ यूनियनों और सामाजिक आंदोलन व्यापक जनाधार के साथ संगठित हैं, और जहाँ पुराने ढर्रे के राजनैतिक दल अपना विश्वास खो चुके हैं चाहे वे एकगुटीयतंत्र की सत्ता हो अथवा जो अपनी पहले की वामपंथी परंपरा का दावा करते हों। अब वहाँ साथ मिलकर बेहतरीन उम्मीदवारों को जिताने की रणनीति उभर रही है ताकि, चुनावी सत्ता का स्थान दक्षिणपंथ के लिए खाली ना रह जाए। संभवतः कुछ हद तक, यह बात ब्राज़ील के ‘भूमिहीन ग्रामीण मज़दूर आंदोलन’ के बारे में सही है, जो विचारशील तथा रचनात्मक तरीके

से अपनी स्वायत्तता की बड़े उत्साह से रक्षा करता है और अपनी स्वतंत्र कार्यवाही के लिए जगह बनाये रखता है लेकिन साथ ही वर्कर्स पार्टी (पी.टी.) के साथ अपने पेचीदे संबंधों को भी बनाये रखता है। चुनावी स्पेस को ऐसा स्पेस नहीं समझा जाता जहाँ सत्ता पूर्णतः जीती जाती है, लेकिन यह भी माना जाता है कि इस स्पेस को धनी शासक वर्ग के लिए रिक्त छोड़ना भारी भूल होगी।

हायती का दूसरा आकर्षक पहलू है खुद आरीस्तीदे का व्यक्तित्व। उनकी लोकप्रियता तथा नैतिक प्रभाव बहुत ज़बर्दस्त है जो मुक्ति धर्मविज्ञान के प्रति उनके घोर समर्पण से जुड़ा हुआ है और संभवतः यही उनके राजकीय व्यवहार में भी भलीभाँति मिला हुआ है। नीकारागुआ में सांदिनीस्ता मंत्रिमंडल के दो विख्यात सदस्य अभिषिक्त पादरी थे उनमें से एक थे महान कवि एरनेस्तो कार्दिनाल। इससे भी महत्वपूर्ण है मेक्सिको के चिआपास क्षेत्र की सापातीस्ता आर्मी ऑफ़ नेशनल लिबरेशन (सापातीस्ता राष्ट्र मुक्ति सेना) का मामला, जो क्षेत्र के मूलनिवासियों के सामाजिक-राजनैतिक व सांस्कृतिक अधिकारों की माँग करते हैं। अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त यह सेना मिथक के समानुपाती हो गयी है। दरअसल, सापातीस्ता को इस इलाके में पूर्व में किये गये प्रगतिशील केंथोलिकों खासकर बिशप सामुएल रूईस के कार्यों से मदद मिली, जिस प्रवृत्ति को उन्होंने मूलनिवासियों की सांस्कृतिक विरासत से जोड़ा साथ ही, पारंपरिक संस्कृति में सुधार किया, खासकर यहाँ के देशज समाज में महिलाओं की स्थिति व राजनैतिक संघर्षों के क्षेत्र में। यही बात पारागुए के किसान आंदोलन पर भी लागू होती है जिन्होंने पिछली पीढ़ी में चर्च के प्रगतिशील लोगों द्वारा किसानों के बीच किये गये कार्यों को आगे बढ़ाया।

चावेज़ खुद आस्तिक क्रिश्चियन है, लेकिन यह बात अप्रासंगिक है क्योंकि उनकी राजनैतिक धारणा पर धर्म का कोई प्रभाव नहीं है। लेकिन, मोरालेस के स्वदेशी उद्घाटन पर उन्हें पारंपरिक समुदायों द्वारा “मूल आदेश की शक्ति” प्रदान की गयी थी। ये बात यहाँ ध्यान देने योग्य है। यह आधुनिक नैतिक कारकों का काव्यात्मक व आध्यात्मिक आयामों की स्वीकृति का द्योतक है। हालांकि, इन आयामों से असहमति किसी भी ‘चर्च’ की परिधि में नहीं आती। ऐसा इसलिए, क्योंकि राजनीति नैतिकता के व्यवहारिक रूप में मात्र भविष्योमुखी योजनाओं की मात्र कल्पना ही नहीं बल्कि यह उन पीढ़ियों के नाम पर मुक्ति का भी कार्य है जो खुद दुख भोगकर चले गये। यह आयाम लातीनी अमरीका में इतना प्रभावशाली एवं सर्वव्याप्त है कि खुद कास्ट्रो ने इस विषय पर एक मसौदा तैयार किया था। ज़्यादा सामान्यीकरण करे बिना यह कहना काफ़ी है कि महाद्वीप के सशक्त जन आंदोलनों में मार्क्सवाद, मुक्ति धर्मविज्ञान, मूलनिवासी सांस्कृतिक कल्पना, लालफीताशाही व विशिष्ट वर्ग विरोध, पारिस्थितिकी पर्यावरण के प्रति आदर, जातीय समानता की मांग तथा नीचे से फैलने वाली जनतंत्र की माँगों का पर्याप्त मिश्रण है। यह चुनावी तरीकों के प्रति नतमस्तक ‘जनतंत्र’ पर होने वाली बहसों से काफ़ी अलग है।

हायती, दूसरी तरफ़ सामाजिक दुर्दशा तथा गरीबी के चित्रण की चरमसीमा भी है जिसमें नवउदार युग के तथाकथित ‘भूमण्डलीकरण’ के कारणस्वरूप बदहाली के नये तौर-तरीके भी शामिल हैं जो कि महाद्वीप में सर्वव्याप्त है। हायती जनता का 75 प्रतिशत हिस्सा गरीबी रेखा से नीचे है, बोलीविया में यह आंकड़ा 63 प्रतिशत है, और पूरे लातीनी अमरीका के लिये – ब्राज़ील व अर्जेंटीना जैसे आर्थिक क्षमता वाले देशों को मिलाकर यह आंकड़ा 44 प्रतिशत है, और दूसरे अनुमानों में ये लगभग 60 प्रतिशत है। बोलीविया में, पिछले 25 सालों

में प्रतिव्यक्ति आय वास्तव में घटी है जबकि इसमें से 20 वर्ष अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ) की शर्तों के अधीन गुज़रे हैं। अधिकतर देशों में बेरोज़गारों व अर्धरोज़गारों (अनियमित क्षेत्र) की जनसंख्या का योग 50 से 70 प्रतिशत के बीच मंडरा रहा है। यदि बोलीविया में तीन खदानें बंद होने से हज़ारों की संख्या में मज़दूरों का पुनः किसानीकरण हो गया तो चीली में 'लचीले श्रमिक बाज़ार' के चलते वस्तुतः अधिकांश नौकरीपेशा अल्पावधि ठेके पर ला फेंके गये हैं। यदि 1970 से 1989 के बीच चीली में मज़दूरी का राष्ट्रीय आय में हिस्सा लगभग 48 प्रतिशत से गिर कर 19 प्रतिशत हो गया तो पेरू में नवउदार शासन में 1970 से 1992 के बीच यह 40 प्रतिशत से गिरकर 16 प्रतिशत हो गया, हालांकि पेरू में चीली की तरह पिनोचे जैसी निर्मम तानाशाही नहीं थी। इस आम बदहाली ने मंज़ले व्यवसायियों को भी नहीं बख़्शा। उदाहारणार्थ, मेक्सिको में बैंक के ऐसे कर्जदारों के संगठन की सदस्यता 1999 में जल्द ही 75,000 तक पहुँच गयी।

मज़दूरों की जीविका पर इस निर्मम हमले का अर्थ था उनके वर्ग संगठनों में पूरी तरह अव्यवस्था व विनाश फैल जाना। बोलीविया की टीन खदानों की यूनियनों अतीत में तमाम बगावती उथल-पुथल में अगली पंक्ति में रहती थीं आज ये यूनियनों शेष नहीं बचीं। इतने सारे बगावती आंदोलनों की जड़ें तथ्यात्मक रूप से ग्रामीण तथा/अथवा शहरी जनता में होती हैं, वो भी इस कदर कि ये जन आंदोलन पूर्ण सर्वहारा सरीखे जन कार्यवाही को पार कर जाते हैं। लेकिन, केवल मज़दूरों के ही नहीं बल्कि निम्न स्तरीय पूंजीपतियों के भी नीचे गिरते स्तर के फलस्वरूप समाज में अति धनी व अति बदहाल लोगों के बीच चरम गोलबंदी इन जन-आंदोलनों को लोकप्रियता व बहुवर्गचरित्रता प्रदान करती है। लातीनी अमरीका के कई देशों, हालांकि सारे देशों में नहीं, आर्थिक व राजनैतिक तंत्र पर लोगों की आस्था तेज़ी से गिरती जा रही है ऐसे में, पारंपरिक राजनैतिक दलों की चुनावी तंत्र द्वारा जन आक्रोश को दबाने की जगह जन कार्यवाहियाँ लेने लगीं हैं।

“सुलगते मैदान, धधकते पहाड़” शीर्षक वाले लेखों की कड़ियों द्वारा हमने लातीनी जनता के जनाआंदोलनों की प्रकृति को समझने की कोशिश की है। बाकी लातीनी अमरीका में राज्य तंत्र की स्थिति

अस्थिर व विविध है। “अच्छाई की धूरी” (एक्सिस आफ गुड) में अभी भी वेनेजुएला तथा क्यूबा हैं और यह देखना होगा कि मोरालेस का बोलीविया इसका स्थायी सदस्य बनता है कि नहीं। महाद्वीप के तीन बड़े देश – ब्राज़ील, अर्जेंटीना व चीली – जैसा की ‘द वॉल स्ट्रीट जर्नल’ का कहना है कि लातीन अमरीकी में चल रहे नवउदारवादी माडल में क्राईसिस के इस दौर में उदार वामपंथ यूरोप के बैंकों को मंज़ूर है ठीक वैसे ही जैसे यूरोपीय सामाजिक जनतंत्रवादी उनके लिए स्वीकार्य हैं।

विन्सेंट फॉक्स के नेतृत्व में, चौथा बड़ा देश मेक्सिको पूरी तरह अमरीका की जेब में है। लेकिन शायद ये जल्द ही “गुलाबी ज्वार” की पकड़ में आये अगर ऑर्दे मानएल लोपेस ओब्रादोर, इस वर्ष जुलाई में होने वाले चुनावों में जीत गये, फ़िलहाल वे मतों में अभी आगे चल रहे हैं। ऐसा होने पर मेक्सिको की सरकार अर्जेंटीना किर्चनेर की तरह दिखेगी। लेकिन घोर दक्षिण से मध्य ‘गुलाबी’ की तरफ़ यह झुकाव ताकत के व्यापक संतुलन में भारी सुधार होगा। परंतु मेक्सिको के लिए वहाँ के शोककाव्य के मुताबिक, “ईश्वर से काफी दूर, लेकिन अमरीका से काफी करीब” जैसा होगा क्योंकि मेक्सिको उत्तर अमरीका मुक्त व्यापार क्षेत्र में बुरी तरह जकड़ा हुआ है। इसी तरह पेरू तथा एक्वादोर में भी वहाँ के मूलनिवासीउन्मुखी आंदोलन व लोक लहर के फलस्वरूप अगामी चुनावों में इसी रास्ते जा सकते हैं। दूसरी तरफ़ ब्राज़ील में लूला नवउदारवादी शासन के साथ किये गये समझौते व भ्रष्टाचार के भँवर में फंसी अपनी सरकार के चलते आगामी चुनाव दक्षिणपंथियों से हार सकते हैं। दक्षिणी अमरीका के छोटे देशों में अमरीका की पकड़ काफी मज़बूत है सिवाय निकारागुआ के जहाँ सांदीनीस्ता के सत्ता में वापस आने की उम्मीदें हैं।

स्थिति परिवर्तनशील है जैसा की चीनी कहावत है कि, ‘स्वर्ग में काफी हलचल मची हुई है।’ लातीनी अमरीका की स्थिति का किसी भी गंभीर विश्लेषण को ग्रासरूट से उभरते हुये जन आंदोलनों तथा सरकारों के बनने व गिरने से होने वाले महत्वपूर्ण परिवर्तनों पर बराबर ध्यान रखना होगा।

फ्रंटलाइन से साभार
अनुवाद : अमित पोखरियाल

गलती सुधार

पिछले अंक में डॉ. आदित्य प्रचण्डिया द्वारा लिखित ‘अमीर खुसरो की भाषा’ पर निबन्ध में गलती से संदर्भ ग्रंथ की सूची रह गयी थी। इस अंक में दी जा रही है :

सन्दर्भ संकेत :

1. लक्ष्मी सागर वार्षीय, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 106
2. सम्पादक धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश, भाग 2, पृष्ठ 19
3. सम्पादक डॉ. नगेन्द्र, भारतीय साहित्य कोश, पृष्ठ 45
4. डॉ. शिवकुमार शर्मा, हिन्दी साहित्य का इतिहास : युग और प्रवृत्तियाँ, पृष्ठ 90-91
5. सम्पादक डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 77-78
6. अमीरखुसरो, नुह सिपहर, सर्ग तीन, अध्याय पाँच, छंदांक 71-73
7. बाबू गुलाबराय, हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास, पृष्ठ 21
8. भोलानाथ तिवारी, अमीरखुसरो, पृष्ठ 53
9. (क) हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास, पृष्ठ 45
(ख) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 30-32
(ग) डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त, आदिकाल की प्रामाणिक रचनाएँ, पृष्ठ 10

मई के महीने में आरक्षण के मुद्दे को लेकर जिस तरह से मीडिया और अखबारों ने खबरें छापीं इससे साफ साबित हो गया कि मीडिया में सामाजिक न्याय का असूल लागू नहीं है। इसकी सबसे बड़ी मिसाल है बिहार में आरक्षण समर्थकों से जुड़ी खबरें। इन खबरों पर मीडिया ने जबर्दस्त सेंसरशिप की। पूरे देश के स्तर पर भी यही रुझान दिखाई दिया। इस रुझान से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इस बार आरक्षण विरोध की जिम्मेदारी पूरी तरह से मीडिया और अखबारों ने ली। इसी तरह अगस्त में दो दिन के आरक्षण विरोधी आंदोलन पर भी मीडिया का यही रुख रहा। इसकी एक वजह है मीडिया और अखबारी कर्मियों का सोशल प्रोफाइल। मंडल आयोग के लागू हो जाने के बाद सवर्णों का एक हिस्सा जो सिविल सर्विसीज़ में नहीं जा पाया वो मीडिया में पहुँच गया और वर्षों के बाद आज वही हिस्सा अपना वर्चस्व जमाये हुए है। यह एक वजह कि इसने आरक्षण विरोधी रैलियों, मीटिंगों और इन्टरव्यूज़ को प्रधानता दी।

मीडिया खुद को लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ मानता है पर ये अक्सर देखने में आया है कि जब भी सांप्रदायिकता विरोध या आरक्षण जैसे मसले सामने आते हैं वो बहुत हद तक सांप्रदायिकता समर्थक और आरक्षण विरोध का कार्यकर्ता और प्रवक्ता बन जाता है। पटना में सैकड़ों आरक्षण समर्थक मेडिकल छात्रों और जूनियर डॉक्टरों को जिस तरह पुलिस के जवानों ने घेर-घेर कर मारा, उन पर लाठी चार्ज की, ये साफ दिखाता है कि नीतिश प्रशासन की क्या भूमिका थी। छात्रों का आरोप था कि अखबार और मीडिया आरक्षण विरोधियों की खबरें ज्यादा छाप रहे हैं और समर्थकों की बिल्कुल भी नहीं। यही हाल इसने दिल्ली के आरक्षण समर्थकों से जुड़ी खबरों का किया। अभी हाल ही में महाराष्ट्र में आडवाणी की भारत सुरक्षा यात्रा के दौरान मराठवाड़ा के नांदेड़ ज़िले में बजरंग दल के कार्यकर्ता बम बनाते वक्त विस्फोट में मारे गये। ये खबर पूरी तरह से सेंसर कर दी गयी। पुलिस के मुताबिक बम बनाने के दौरान बजरंग दल के कार्यकर्ता हिमांशु और नरेश बजरंग दल के ही एक कार्यकर्ता के घर में बम बना रहे थे। पुलिस को छापे में हिमांशु पालसे के घर से मुसलमानों के पहनावे और मुसलमानों के प्रार्थना स्थलों से जुड़ी कई आश्चर्यजनक चीज़ें बरामद हुईं पर मीडिया में कोई खबर नहीं।

ऊपर लिखी दो मिसालें साबित करती हैं कि मीडिया अब घटनाओं को गढ़ने और सच को छुपाने की हद तक चला गया है।

एक बात और, एम्स में आरक्षण विरोधी आंदोलनरत डॉक्टरों और छात्रों का आंदोलन मीडिया में बड़ी प्रमुखता से आया। **ये बात याद रखने की है कि उच्च न्यायालय द्वारा लगायी गयी पाबन्दी के बाद भी एम्स के परिसर में ये आंदोलन चलता रहा और मीडिया को उच्च न्यायालय का ये फैसला एक बार भी याद नहीं आया !** न केवल आरक्षण विरोधी आंदोलन परिसर में चला पर इसे सब तरह की सुविधाएं भी दी गयी। एम्स के साथ-साथ लेडी हार्डिंग कालेज, मौलाना आज़ाद और दूसरे संस्थानों में सवर्ण परिवार में जन्मे डॉक्टरों ने जंतर-मंतर चौराहे

पर आरक्षण के समर्थन में प्रदर्शन किया पर मीडिया और अखबारों ने इसकी सूचना तक नहीं दी। सिर्फ दिल्ली में ही दर्जनों आरक्षण समर्थकों के आंदोलनात्मक कार्यक्रम हुए पर उन्हें मीडिया और अखबारों में कोई जगह नहीं मिली।

मीडिया की आरक्षण विरोधी भूमिका और साफ नज़र आने लगती है जब हम पटना के आरक्षण समर्थकों के और दिल्ली के आरक्षण विरोधी आंदोलन का एक तुलनात्मक अध्ययन करते हैं। आरक्षण समर्थकों को मीडिया शुरू से ही उग्र और हिंसक बनाकर पेश करता है और आरक्षण विरोधियों पर पुलिस के हल्के लाठी चार्ज को भी हाईलाइट किया जाता है। टाइम्स ऑफ इंडिया के चैनल को आरक्षण विरोधियों का खून-खून नज़र आता है और आरक्षण समर्थकों का खून पानी नज़र आता है। करण थापर ने बताया कि देश में पिछड़ों की आबादी 36 प्रतिशत है। कहाँ से आया ये आंकड़ा ? राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण (ने.से.स.) संस्थान द्वारा इस तरह का कोई सर्वेक्षण हुआ ही नहीं। ज़ाहिर है आंकड़े गढ़े गये। हालांकि सामाजिक न्याय मंत्रालय ने इस संस्थान से कई बार अनुरोध किया है कि पिछड़ी आबादी में कम से कम गरीबी रेखा के नीचे रहने वालों की तादाद की गिनती कर दे। पर इस संस्थान ने साफ इन्कार कर दिया।

एक बात जो और सामने आयी वो ये कि मीडिया में जो उदारीकरण, भूमंडलीकरण और बाज़ारीकरण के समर्थक हैं वही आरक्षण विरोध में खड़े हैं। वे मजदूरों के हितों, न्यूनतम मजदूरी और न्यूनतम छुट्टी के अधिकारों की बात नहीं करते। यही नहीं ये आरक्षण विरोधी अब संसदीय ढाँचे को भी पसंद नहीं करते। उनके मुताबिक ये गरीब देश के लिये बहुत महंगा है। मीडिया की सर्वसम्मति से पास किया गया आरक्षण के प्रावधान का संविधान संशोधन पूरी तरह से अमान्य है। ये एक विडम्बना है कि सरकार द्वारा गठित ज्ञान आयोग के प्रधान सैम पिट्रोदा ने सरेआम कहा कि उन्हें संसद में किये गये संशोधन की कोई जानकारी नहीं है।

एक बात और आरक्षण विरोध के आंदोलन के दौर में प्रगतिशील माने जाने वाले चैनल भी आरक्षण विरोधी नज़र आये। एनडीटीवी सबसे ज्यादा प्रगतिशील माना जाता है। लेकिन आरक्षण के मुद्दे पर उसके चैनलों को देखकर अफसोस हुआ। बरखा दत्त का जब चैनल पर आरक्षण विरोध दिखाने से जी नहीं भरा तो अंग्रेजी के एक दैनिक में अपने मंडल विरोध को जायज़ भी ठहराया। विनोद दुआ वही गालियां अर्जुन सिंह को देते हैं जो पहले विश्वनाथ प्रताप सिंह और कर्पूरी ठाकुर ने खायी थीं। दुआ को अर्जुन सिंह छंटे हुए राजनेता नज़र आते हैं। पर खुद दुआ कितने छंटे हुए पत्रकार और मीडियाकर्मी हैं ये सब जानते हैं। दुआ की भाषा में और अर्जुन सिंह के खिलाफ देश भर में आरक्षण विरोधियों द्वारा भेजे गये एसएमएस की भाषा में कोई फर्क नहीं है। आरक्षण विरोध आंदोलन के दौरान एक सन्देश जो सारे देश में पूरी तरह गया वो ये कि इलेक्ट्रॉनिक मीडिया पिछड़ा, दलित, गरीब और महिला विरोधी होने के साथ-साथ अल्पसंख्यक विरोधी भी है। **मीडिया को यह समझना जरूरी है**

कि देश का भविष्य पिछड़ा, दलित, महिला, आदिवासी और अल्पसंख्यक हैं। मीडिया को याद रखना चाहिये कि वो न तो मंडल को रोक सका और न ही कमंडल को स्थापित कर सका।

एक बात याद रखनी चाहिये कि मीडिया वो चाहे इलेक्ट्रॉनिक हो या प्रिंट न तो घटनाओं को गढ़ने और न ही तथ्यों को छुपाने से बाज आयेगा क्योंकि मीडिया का सोशल प्रोफाइल ही उसकी विचारधारा और दिशा को तय करता है और इस सोशल प्रोफाइल में 'द्विज' बहुसंख्यक हैं।

हाल ही में दिल्ली में हिन्दी और अंगरेजी दैनिकों और टी.वी. चैनलों में काम कर रहे 315 वरिष्ठ पत्रकारों के 'सोशल प्रोफाइल' के पहली बार किये गये सर्वेक्षण में पाया गया कि इनमें 71 प्रतिशत उच्च जातीय हिंदू पुरुष राष्ट्रीय मीडिया यानि टी.वी. रिपोर्टर, टी.वी. एंकर, टी.वी. न्यूज़ रीडर और अन्य वरिष्ठ स्थानों पर नियुक्त हैं जबकि वे (उच्च जातीय हिंदू पुरुष) कुल जनसंख्या का केवल 8 प्रतिशत हैं। महिलाएं, निम्न जाति और अल्पसंख्यकों (मुसलमान) की संख्या जनसंख्या के अनुपात में बहुत ही कम है। इस सर्वे के मुताबिक 315 फैंसले लेने वाले और नीति तय करने वाले वरिष्ठ पत्रकारों और मीडिया कर्मियों में एक भी दलित या अनुसूचित जाति का कर्मी नहीं है।

अगर पुरुषों और महिलाओं दोनों का योग किया जाये तो द्विजों का प्रतिशत 81 हो जाता है। हालांकि कुल जनसंख्या में ये कुल 16 प्रतिशत हैं। सिर्फ ब्राह्मणों का प्रतिशत अगर देखा जाये तो ये 49 प्रतिशत है। मतलब 315 वरिष्ठ पत्रकारों और मीडिया कर्मियों

का 49 प्रतिशत ब्राह्मण पुरुष और महिलाएं हैं। अगर इसमें अद्विज उच्च जातियाँ जैसे मराठा, पटेल, जाट और रेड्डी जोड़ दिये जायें तो उच्च जातियों का हिस्सा 88 प्रतिशत है। अगर ओबीसी को देखा जाये, जो कुल जनसंख्या के 40 प्रतिशत हैं, तो इनका प्रतिशत भी बहुत कम है। अंगरेजी पत्रकारिता में वरिष्ठ स्थानों में ओबीसी का प्रतिशत सिर्फ एक प्रतिशत है। हिंदी पत्रकारिता में ये प्रतिशत सिर्फ आठ है। अल्पसंख्यकों यानि मुसलमानों का प्रतिनिधित्व इस क्षेत्र में बहुत ही न्यूनतम से भी नीचे है। ये वरिष्ठ स्थानों में सिर्फ 3 प्रतिशत है जब कि ये लोग कुल जनसंख्या का 13.5 प्रतिशत हैं। हिंदी मीडिया (टीवी) में वरिष्ठ स्थानों में इनका प्रतिशत छह है। अंगरेजी मीडिया (टीवी) में वरिष्ठतम स्थानों में से देहली में एक पर भी मुसलमान नहीं है। ईसाइयों का जहाँ तक सवाल है वो कुल जनसंख्या के 2.3 प्रतिशत है और उनका मीडिया में प्रतिनिधित्व 4 प्रतिशत है। महिलाएं, ओबीसी या पिछली जाति के मुसलमान और ईसाई पूरी तरह से इस क्षेत्र में अनुपस्थित हैं। सर्वे ने पाया कि 315 वरिष्ठतम पत्रकारों में एक भी ओबीसी महिला नहीं है।

जहाँ तक जेंडरगत बैलेन्स का सवाल है अंगरेजी मीडिया में स्थिति काफी अच्छी है। 32 प्रतिशत महिलाएं वरिष्ठतम सम्पादकीय पदों पर हैं। वरिष्ठतम सम्पादकीय पदों पर अंगरेजी पत्रकारिता में महिलाओं की संख्या 16 प्रतिशत है जबकि हिन्दी मीडिया और पत्रकारिता में ये प्रतिशत 11 है। इससे साफ साबित होता है कि मीडिया में सांप्रदायिक, अलोकतांत्रिक और आरक्षण विरोधी तत्व बहुतायत में हैं और उससे वस्तुनिष्ठ (ओबजेक्टिव) रिपोर्टिंग की उम्मीद करना सरासर बेवकूफी होगी।

पृष्ठ 3 का शेष....

की चढ़ती-गिरती तानों को संजोते थे तो सिर्फ कर्णप्रिय आवाजें नहीं पैदा कर रहे होते थे। यह सजावट से कहीं ज्यादा बात होती थी। इस क्रिया में वे विचार और एहसास के अनुभव की सीमाओं को नया विस्तार देते थे।

उन्होंने विजय भट्ट की सफल हिन्दी फिल्म *गूंज उठी शहनाई* में भी शहनाई बजाई थी। इस फिल्म के शीर्षक गीत "मेरे सुर और तेरे गीत" में लता मंगेशकर के साथ उनकी प्रस्तुति को आवाज़ और बाजे का आदर्श मिलन माना जाता है। इसी तरह का परिपक्व संगम लैस्टर यंग के सैक्सोफोन और बिली हैलीडे के जैज़ गायन की रिकॉर्डिंग्स में दिखाई देता है। अमेरिका में 1930 और 40 के दशकों में इस श्रृंखला की बहुत सारी रिकॉर्डिंग्स तैयार की गई थीं। बिस्मिल्ला खाँ ने कुछ और फिल्मों के लिए भी शहनाई बजाई थी जिनमें सत्यजीत रे की *जलसागर* (1958) भी शामिल है। इस फिल्म का संगीत उस्ताद विलायत खाँ ने दिया था। हाल ही में उन्होंने आशुतोष गोवारीकर की फिल्म *स्वदेश* में भी अपनी शहनाई का जादू बिखेरा था।

उन्होंने विलायत खाँ के साथ सितार पर और प्रो. वी. जी. जोग के साथ वायलन पर युगल प्रस्तुतियां दी थीं। इनके अलावा

ओमकारनाथ ठाकुर से हिंदुस्तानी संगीत में वायलिन वादन का गहन प्रशिक्षण लेने वाले एन. राजम के साथ भी उनकी जुगलबंदी के रिकॉर्ड मौजूद हैं। सितार वादक शाहिद परवेज़ के साथ भी उन्होंने कई बार बजाया। ईएमआई इंडिया ने उनकी गायी हुई टुमारियों की एक एलबम भी रिलीज़ की थी।

उनकी बेहतरीन रचनाओं के लिए उन्हें हमेशा याद रखा जाएगा। बिस्मिल्ला खाँ इतने लम्बे समय तक टिके रहे इसकी मुख्य वजह ये थी कि माइक्रोफोन का इस्तेमाल बड़े पैमाने पर होने लगा था लेकिन उनके संगीत की आभा उनकी अपनी उपलब्धि थी जो अंत तक उनके साथ रही। अब जबकि हिंदुस्तानी मरगिया संगीत एक नाजुक मोड़ पर पहुंच गया है और जबकि खरीद-फरोख्त व रिकॉर्डिंग की दुनिया के लोग और सुनने वाले होश खो देने वाले संगीत से बेपरवाह होते जा रहे हैं, हमें इस बात के लिए आभारी होना चाहिए कि हमारे पास उस्ताद बिस्मिल्ला खाँ के उस अलौकिक संगीत का इतना बड़ा खज़ाना मौजूद है। उस्ताद बिस्मिल्ला खाँ भारतीय संगीत में साझी विरासत के आदर्श प्रतिमान के रूप में याद किये जायेंगे।

संपादित, फ्रंटलाइन से साभार
अनुवाद : योगेन्द्र दत्त

टी.वी. सीरियल्स और स्त्री विमर्श

डा. योगेश भटनागर

मराठी के मशहूर दादा कोंडके के बारे में हमेशा कहा जाता रहा है कि वो दो मायने वाले संवादों वाली निहायत ही घटिया फिल्में बनाया करते थे। सारी फिल्मों में दो मायने लिये संवाद ज्यादातर स्त्री और उसके अंगों पर केंद्रित रहते थे। संवाद बहुत ही हल्के फुलके हुआ करते थे और उनका उद्देश्य कहने को तो सिर्फ हंसाना था पर असल में महिलाओं का मज़ाक उड़ाना था। दादा कोंडके की सस्ते मज़ाकों की शैली काफी अरसे तक चली। मराठी और कुछ हद तक पंजाबी तक सीमित रही। पर पिछले कुछ सालों से टी.वी. पर दिखाये जा रहे सीरियल, जहाँ तक स्त्री की छवि, उसकी मानसिकता, उसकी सोच और उसके कार्यकलापों का सवाल है, वो भाषा से परे जाकर एक घटिया और अपसंस्कृति की अद्भूत मिसालें हैं और इस शैली को सबसे ज्यादा तरजीह दी है एकता कपूर की बालाजी टेलीफिल्म्स कम्पनी ने। इस टी.वी. कम्पनी का एक न एक सीरियल हर किसी चैनल पर चल रहा है। कुछ तो पाँच साल से भी ज्यादा से चल रहे हैं। स्टार प्लस इस कम्पनी को प्रमोट करने में सबसे आगे है। वैसे तो ज्यादातर सीरियल भाषा, दिशा और कंटेंट के नाम पर बहुत ही घटिया हैं पर 'के' सीरियल इनमें सबसे अब्बल हैं। बाला जी टेलीफिल्म्स की 'सास भी कभी बहु थी', 'कसौटी जिन्दगी की', 'कहानी घर घर की', 'कहीं किसी रोज', 'कैसा ये प्यार है', 'कुंडली' या फिर जी.टी.वी. पर 'सलोनी' या फिर कोई और सभी सीरियलों में भारतीय स्त्री की छवि को निम्न से निम्न स्तर तक ले जाया गया है। 'बोल्ड एण्ड ब्यूटीफूल' की तरह एक आदमी कई शादियाँ कर रहा है। स्त्री भी शादी करने के मामले में कम नहीं है। दर्शक भूल जाता है कि कौन सा बच्चा किस शादी से है और किस बाप या किस माँ से है। हर सीरियल में एक स्त्री पात्र है जो कठोर, क्रूर, निर्मम, षडयंत्र, बुद्धि और दुष्टा है और ये पात्र इतनी अंसवेदनशील, चालाक, और षडयंत्रि है कि उसकी सीमा ही नहीं है। औरों की खुशियों को तबाह करना, औरों के जीवन में कलह और ज़हर घोलना इसके अलावा वो कुछ और सोच ही नहीं सकती। बालाजी टेलीफिल्म्स जिस किस्म के नारीवाद को आगे बढ़ा रही है वो इन अर्थों में तारीफ़ के लायक है कि क्रूरता की चरम कल्पना का हकदार वो पुरुष को नहीं स्त्री को मानती है। उसके स्त्री पात्र धोखेबाजी और नृशंसता में भी कम नहीं हैं। किसी के बनते काम को वो बिगाड़ने में मज़ा लेती है। ज़हरीली ताने बाज़ी में वो पूरी तरह विश्वास करती है। वो मानवीय संवेदना से परे है। किसी की भी जिन्दगी को हज़ार किस्मों के कष्टों और दुखों से भरने के ख्याल पर से उसके होठों पर ज़हरीली मुस्कान फैल जाती है, आँखों में चमक आ जाती है। इन सीरियलों की खलनायिकाएँ तो हिंदी फिल्मों की खलनायिकाओं से भी चार कदम आगे निकल गयी हैं। हिंदी फिल्मों की खलनायिका को अपने कुकर्मों पर कभी-कभी पछतावा तो होता है पर कोमलिका, कुकी काकी, कावेरी या प्रेरणा

पछतावा तो दूर इनमें तो इंसानियत दूर-दूर तक नहीं है। उस पर हर टी.वी. सीरियल निर्माता यह कहते नहीं थकता कि वो तो समाज का यथार्थ दिखा रहा है। क्या स्त्री के संदर्भ में यही एक यथार्थ है? इससे भी बड़ा सवाल है कि हमारे परिवार इन सीरियलों को देखते क्यों हैं? वे कैसी मानसिकता, कैसे मूल्यों और कैसी संस्कृति की तरफ़ बढ़ रहे हैं?

एक और सीरियल 'सरकार' जी टी.वी. पर चला। लगा जैसे एक राजनेत्री और राजनीति के दांवपेंच पर आधारित है पर धीरे-धीरे 'याना' जैसी स्त्री पात्र में 'कोमलिका' का ताज़ा संस्करण सामने आया। याना और कोमलिका अपने षडयंत्रों को अंजाम देने के लिए लाखों रुपयों की सुपारी इस तरह देती हैं जैसे किसी बड़े स्टोर में 50+20 प्रतिशत पर सेल में सामान खरीद रही हों। इन सीरियलों के दर्शक मध्यवर्ग और निचले तबके के हैं। ये सीरियल इन्हें अपनी सच्चाई से काट कर घंटों उस दुनिया में ले जाते हैं जहाँ हीरों की चमक, बड़े-बड़े झाड़फानूस, कश्मीरी कालीन, विदेशी सोफे और सब कमरों में विदेशी पेंटिंग टंगी होती हैं। सभी स्त्री पात्र लाखों रुपयों की कीमत की डिजाईनर साड़ियाँ पहने होती हैं। इनके घरों में लाखों रुपये केश रखे होते हैं और सब काम टेलीफोन पर होते हैं। सारे टी.वी. सीरियलों में शहरी मध्यवर्ग का दब्बूपन और एक ओछा फलटेशन दिखाई पड़ता है जिसे लेखक प्रेम का नाम देकर पेश करता है। इन सीरियलों के मुताबिक आज के हिंदुस्तान की सबसे बड़ी समस्या यह है कि — ये बच्चा किसका है? रहीस पंजाबी, राजस्थानी और उत्तर प्रदेश के घरों में वैष्णो देवी या अष्टभुजी दुर्गा की छत्रछाया में अविश्वसनीय गृह कलह, षडयंत्र और धोखेधड़ी से दर्शकों का मनोरंजन हो रहा है।

यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि आज के टी.वी. सीरियलों के प्रेरणा स्रोत हिन्दी फिल्में हैं। बालाजी टेलीफिल्म्स और दूसरी छोटी कम्पनियाँ अब सीरियल के बहाने पाँच-पाँच साल तक आधा घंटा रोज चलने वाली फिल्में दिखा रहे हैं — इनमें वही बैडरूम सीन्स, अपराध, कत्ल, बलात्कार, उत्पीड़न और शोषण है। इन सबमें स्त्री ही केंद्र बिन्दु है। दूसरी बात, सभी सीरियल डिस्क्लेमर से शुरू होते हैं इसलिये हर मूर्खतापूर्ण हरकत एक चमत्कार या ईश्वरीय ताकत के नतीजों के रूप में समाने आता है। सबसे बड़ी बात ये कि स्त्री ही इसमें शिकार और शिकारी है और वो भी अति सम्पन्न परिवार की।

आज के समाज में टी.वी. का इस्तेमाल ज्यादा सीरियल देखने के लिए होता है। 24 x 7 न्यूज़ चैनलों, डिस्कवरी, नेशनल जियोग्राफिक, या डीडी भारती के दर्शक बहुत कम हैं। ये बात एक सच है कि हम रोज़ एक दूसरे से बातें करते हुए कहते हैं कि सीरियल बहुत खराब आ रहे हैं। महिला की एक नयी छवि दी जा रही है जो समाज में उसका स्थान नीचा कर रही है। ये सीरियल

ये साबित कर रहे हैं कि औरत ही औरत की दुश्मन है और वही अपनी इस दुर्दशा और उत्पीड़न की ज़िम्मेदार है। क्या क्रूर, कातिल, षडयंत्री और दुष्टा होना उसे समाज में उसके हो रहे शोषण और उत्पीड़न से बचा पा रहा है ? इसका जवाब बालाजी टेलीफिल्म्स और दूसरी ऐसी कम्पनियाँ नहीं देंगी क्योंकि इन कम्पनियों में नौकरी कर रहे लेखक, संवाद लिखने वाले और सम्पादक सभी अपने मालिक की मानसिकता को आधे समाज की मानसिकता बनाने में लगे हैं। ये एक चिन्ता और अफसोस का विषय है।

हर चैनल पर होने वाली प्रतियोगिताओं के लिये या न्यूज़ चैनल पर बिना किसी विश्लेषण या सोच विचार के किसी भी विषय पर हम लाखों एस.एम.एस. करके या कार्ड लिखकर तुरन्त (इन्सटेन्ट)

प्रतिक्रिया और अपना मत भेज देते हैं। हम 10 सेकेंड में उस सट्टे में शामिल हो जाते हैं कि सचिन सेन्चूरी बनायेगा या नहीं, करिश्मा कपूर को तलाक लेना चाहिये या नहीं, या फलां अभिनेत्री शादी करेगी या नहीं पर टी.वी. सीरियल्स पर हम अपनी प्रतिक्रिया कभी नहीं भेजते। आज के नारीवादी विमर्श का तकाज़ा है कि सभी ऐसे टी.वी. सीरियलों, जो स्त्री की निम्नस्तर की छवि, आपराधिक, षडयंत्री, दुष्टा, नृशंस और कुत्सित मानसिकता को ही सामने ला रहे हैं और उसकी साकारात्मक मानसिकता पर नकारात्मक और गहन आपराधिक आघात कर रहे हैं, के खिलाफ एक जनजागरण अभियान चलाना चाहिये।

इसीलिए यह एपीसोड प्रसारित नहीं किया गया

मीडिया में आरक्षण पर कई तरह की बहस देखी और सुनी गयीं। लेकिन अंग्रेज़ी के एक महत्वपूर्ण चैनल में 'रोज़ाना' रात्रि में प्रसारित नहीं किया जा सका। कारण बेहद दिलचस्प है। हुआ यूँ कि उस कार्यक्रम के लिए निर्धारित चार लोगों को बुलाया गया। इसमें खुले बाज़ार के समर्थक माने जाने वाले अर्थशास्त्री गुरुचरण दास, कांग्रेस के छात्र संगठन के एक नेता, आरक्षण विरोधी मंच यूथ फॉर एक्वलिटी के डॉ. महक सिंह के अलावा मीडिया स्टडीज ग्रुप के जितेन्द्र कुमार शामिल थे। इस बहस में बार-बार यह सवाल उभरकर सामने आ रहा था कि क्या योग्यता के कोई मायने नहीं हैं। कार्यक्रम के एंकर भी बार-बार योग्यता पर जोर दे रहे थे। लेकिन इन चारों के बीच जितेन्द्र कुमार का कहना था कि योग्यता कोई मायने नहीं रखती है। उनकी नज़र में सभी को एक समान अवसर प्रदान किया जाना ज़रूरी है और सामाजिक स्तर पर गहरे विभाजन की स्थिति में आरक्षण की अनिवार्यता से इस शर्त की पूर्ति होती है। जैसे आरक्षण की सुविधा के तहत मेडिकल के किसी विद्यार्थी को केवल नामांकन के समय मेडिकल की पढ़ाई करने का अवसर मिलता है। इस अवसर के मिलने के बाद आरक्षण प्राप्त करने वाले विद्यार्थी को भी दूसरे विद्यार्थियों की तरह परीक्षा से गुज़रना पड़ता है। इसी आलोक में अवसर को महत्वपूर्ण बताकर जितेन्द्र कुमार अपने तर्क प्रस्तुत कर रहे थे। उनका कहना था कि किन्हीं भी दो व्यक्तियों के बीच विलक्षणता की दूरी ज़्यादा से ज़्यादा एक से दस के बीच हो सकती है। उदाहरण के लिए प्रसिद्ध वैज्ञानिक आइंस्टाइन की विलक्षणता नम्बर एक पर है तो दूसरा सबसे ज़्यादा मूर्ख व्यक्ति का ज्ञान बोध दस नम्बर से कम नहीं हो सकता है। लेकिन बात तब थोड़ी बिगड़ गयी जब

उन्होंने इस बहस में हिस्सा लेने वाले सदस्यों को ही केंद्रित करके योग्यता की कसौटी पर अपनी बात शुरू कर दी। उन्होंने गुरुचरण दास को सम्बोधित करते हुए कहा कि देश में आर्थिक उदारीकरण के शुरू होते ही उन्हें एक बहुराष्ट्रीय कम्पनी प्रोक्टर एंड गैम्बल में मुख्य कार्यकारी अधिकारी लिखकर काम चलाना पड़ रहा है। लेकिन बात तब और बिगड़ गयी जब एंकर द्वारा बार-बार योग्यता पर जोर दिया जाता रहा और जितेन्द्र कुमार ने उक्त एंकर की योग्यता पर सवाल खड़े करने शुरू कर दिये। उन्होंने एंकर महोदय से कहा कि आप दिल्ली के नामी-गिरामी कॉलेज सेंट स्टीफेंस में थर्ड डिविजन के नम्बर पाते थे। कॉलेज में थर्ड डिविजन पाने के बाद संघ लोक सेवा आयोग (यूपीएससी) की परीक्षा में भी वे विफल रहे। लेकिन आप आज देश के जाने-माने पत्रकारों में एक हैं। यहाँ योग्यता से क्या मायने निकाले जायें ? टेलीविज़न में कार्यक्रम करने वाले एंकर बराबर अपने सामने वाले को निशाना बनाते हैं लेकिन जब उनके बारे में तथ्यों से उन्हें अवगत कराया जाता है तो वह नागवार गुज़रता है। इस तरह के जवाब से एंकर महोदय बेहद नाराज़ हुए। योग्यता को आड़ बनाकर आरक्षण विरोध का उनका अभियान जैसे पनाह माँगने लगा। बात यहाँ तक पहुँची कि उन्होंने अपनी नाराज़गी प्रकट करने के लिए अपने सम्पादकीय दायित्व से ऐसी छूट ली कि उस रिकॉर्डेड कार्यक्रम के प्रसारण पर रोक लगाने का फैसला कर लिया। जिन लोगों ने स्टूडियो में जाकर अपना इतना समय दिया एंकर महोदय ने उन्हें अपने इस एपीसोड को रद्द करने के कारणों को भी बताना ज़रूरी नहीं लगा।

कथादेश से साभार

संसेक्स – ऐतिहासिक उछाल की हकीकत

—कमल नयन काबरा

देश की तीस बड़ी कंपनियों के शेयरों के दामों का सम्मिलित सूचकांक दस हजार के ऐतिहासिक महत्व का अभूतपूर्व अंक पार कर गया। परंतु आश्चर्य है कि संचार माध्यमों के अलावा आम भारतीयों को कोई खुशी नहीं हुई। ये वे लोग हैं जो उदारीकृत-वैश्वीकृत व्यवस्था में पिछले पंद्रह सालों से जीने के बावजूद संसेक्स का नाम तक नहीं सुन पाए हैं। वे नहीं जानते हैं कि आज जो प्रधानमंत्री हैं, उन्होंने कभी वित्त मंत्री की हैसियत से कहा था कि जब शेयर चढ़ रहा हो तो अर्थव्यवस्था में गिरावट आ ही नहीं सकती है। इसके कुछ ही दिनों बाद पता चला कि यह आसमान छूता शेयर बाजार हर्षद मेहता जैसे आर्थिक अपराधियों के हथकंडों का नतीजा था। इसका मतलब यह नहीं कि शेयरों में आए हर उछाल के पीछे कोई हथकंडा हो लेकिन इसकी आशंका तो रहती है। जब यूपीए सरकार सत्ता में आई तो शेयर बाजार गिर कर 4277 के स्तर पर आ गया था लेकिन डेढ़ साल के इसके कार्यकाल में यह सूचकांक छह हजार अंक ऊपर चढ़ गया है। मात्र पिछले दो महीने में यह सूचकांक एक हजार अंक बढ़ गया है।

वित्त मंत्री पी चिदम्बरम ने कहा था कि यदि सूचकांक आठ हजार का आंकड़ा पार करता है तो वे चिंतित होंगे। जब यह अंक दस हजार की देहरी को छूने ही वाला था तो वित्त मंत्री ने कहा कि उनका मंत्रालय और से.बी. शेयर बाजार के उतार-चढ़ाव पर चौकस नजर रखे हुए हैं। अगस्त के महीने सूचकांक 11,000 का आंकड़ा पार कर गया है जो मई के बाद दूसरी बड़ी उछाल है। अब इस पृष्ठभूमि में शेयर की ऐतिहासिक उछाल पर गौर करना बेहतर होगा। संसेक्स में शुमार तीस कंपनियों के अलावा हजारों मझोली और छोटी कंपनियों के शेयरों के भाव लगभग जस के तस पड़े हुए हैं यानी इस उछाल में उनका हिस्सा लगभग नगण्य है। शेयर बाजार के छोटे निवेशकों के पल्ले कुछ भी नहीं पड़ा है। आज मुंबई शेयर बाजार के सभी शेयरों का पूंजीगत मूल्य 26 लाख करोड़ रुपयों से भी ज्यादा है। पिछले दो महीनों में इसमें 1.84 लाख करोड़ रुपयों का इजाफा हुआ है। इस पर भी इन तीस कंपनियों के पूंजीगत मूल्य में विदेशी संस्थागत निवेशकों का हिस्सा बहुत बड़ा है। पिछले एक महीने में इन बाहरी बड़े निवेशकों ने 12 अरब डॉलर डाले हैं जबकि पिछले वर्ष यह राशि 10.5 अरब डॉलर थी। म्यूचुअल फंडों ने भी चढ़ते बाजार की साख के आधार पर नागरिकों से पिछले साल 24 हजार करोड़ रुपये एकत्रित किये थे और मात्र जनवरी में ही लगभग पांच हजार करोड़ रुपये जुटा लिये थे। इस अति विशाल राशि का अधिकांश भाग इन तीस कंपनियों के शेयरों के खरीदने में लगाया गया है। इन शेयरों की संख्या निश्चित तौर पर अपरिवर्तित रही है। यदि एक अपरिवर्तित मात्रा के लिए खरीदार अपनी तिजोरियां उदारतापूर्वक खोल दें तो उनके शेयर आसमान छुएंगे ही। वे ज्यादा फायदे में रहेंगे, जिनके पास इन तीस कंपनियों के शेयर हैं।

विदेशी संस्थागत निवेशकों ने इस तरह अपने नियंत्रण का

बाजार आधारित पूंजीगत मूल्य बढ़ाया है। परंतु इन कंपनियों के बहुमत शेयरधारी भारतीय प्रवर्तक-नियंत्रक अपने शेयरों की हिस्सेदारी एक निश्चित सीमा से कम करके इन कंपनियों से हाथ नहीं धोना चाह रहे हैं। अतः इन कंपनियों के अच्छे-खासे शेयर उनके नियंत्रक-प्रवर्तक परिवारों के पास हैं। इस तरह संसेक्स की ऊंची छलांग के लाभार्थी वे हैं जो पहले से ही अरबपति-खरबपति हैं। यदि अमीरों तथा विदेशी संस्थागत निवेशकों के पूंजीगत मूल्य में बढ़त भारतीय अर्थव्यवस्था के टिकाऊपन की कसौटी है तो हमें यूपीए सरकार और उसके नियंत्रकों को शाबासी देनी चाहिए। लेकिन इतनी कम कंपनियों (हमारी कुल कंपनियों की संख्या सात लाख के आसपास है) की पूंजीगत बाजार में इस ऐतिहासिक वृद्धि से खुश होकर लोगों ने धी के दिए नहीं जलाए तो इसे उनकी नादानी कहने के बजाए, इस पर गौर किया जाना चाहिए।

कुछ महत्वपूर्ण आर्थिक तथ्यों पर नज़र डालें तो संपूर्ण अर्थव्यवस्था पर शेयर बाजार की मज़बूती के पड़ने वाले प्रभाव का खुलासा हो जाएगा। होता यह है कि शेयर बाजार के कुछ हजार दैनिक खिलाड़ी कुछ खास कंपनियों के शेयरों की खरीद-फरोख्त करके उनके दामों को गिराते-चढ़ाते रहते हैं। किसी एक दिन, सप्ताह या तिमाही में आर्थिक हालात, खासकर कंपनियों के बाजार और मुनाफे की संभावना में इतने भारी उतार-चढ़ाव हो सकते हैं, जितने उतार-चढ़ाव शेयरों के भावों में होते हैं। अधिकांश शेयर बाजार के खिलाड़ी इन आर्थिक-वित्तीय-तकनीकी और विश्वस्तरीय परिवर्तनों को समझकर भावों की बोली लगा पाते हों, यह मानना कपोल कल्पना है। फिर भी शेयर बाजार में चार हजार करोड़ रुपयों तक हो जाता है। जाहिर है, यह महज पूंजी, धारणाओं, अंदाज़ और जोखिम उठाने की क्षमता का खेल है। इस तरह अरबों की अनार्जित आय प्राप्त कर अमीर आदमी पहले से विकट आर्थिक विषमता के हल में बिना कोई योगदान दिए, उसे और जटिल बनाते रहते हैं।

क्या शेयर बाजार की यह तेज़ी ठोस भौतिक निवेश, उत्पादन, रोजगार और जन-जन की खुशहाली का सबब बन सकती है? इसे समझने के लिए कुछ बातों पर विचार जरूरी है। गौरतलब है कि बचत दर 29 प्रतिशत तक पहुंच गयी है। आज भी हमारा असंगठित घरेलू क्षेत्र ही राष्ट्रीय बचत का मुख्य स्रोत है। परंतु यह बचत राशि अधिकांशतः सोना-चांदी, ज़मीन-जायदाद, मशीनरी आदि में लगायी जा रही है। हालत यह है कि 1994-95 के बाद बचत कम हो रही है। नवीनतम आंकड़े बताते हैं कि 2004-05 में वित्तीय रूप में बचत महज़ 4333 करोड़ रुपयों के बराबर थी। इसी बचत का एक हिस्सा शेयर बाजार में छोटे-निवेशकों द्वारा डाला जा सकता था परंतु उन्होंने यह नहीं किया। आज सोने-चांदी और ज़मीनों-मकानात के दाम आसमान छू रहे हैं। क्यों?

हमारा घरेलू क्षेत्र शेयर बाजार और वित्तीय क्षेत्र से आठ गुना ज्यादा राशि इन भौतिक परिसंपत्तियों में निवेश कर रहा है। पिछले साल यह भौतिक निवेश 34,112 करोड़ रुपये का

शेष पृष्ठ 18 पर....

आतंकवाद – चुनौती और जवाब

आइ.एस.डी.

तेरह साल बाद देश की आर्थिक राजधानी एक बार फिर आतंकवाद का निशाना बनी। 12 मार्च 1993 के बम धमाकों में 257 जानें गयीं थीं और इस बार 11 जुलाई के धमाकों में पहले से भी ज्यादा जानें गयीं और पहले से कहीं ज्यादा आदमी घायल हुए। इस बीच दुनिया के बड़े शहरों जैसे लन्दन और मैड्रिड ने भी आतंकवादी हमले सहे हैं। पिछले कई सालों से दिल्ली और देश के अन्य शहरों में आतंकवादी हमले होते रहे हैं। एनडीए सरकार के राज के दौरान देश ने कई आतंकवादी हमले देखे जिसमें पार्लियामेंट पर हुआ आतंकवादी हमला भी शामिल है। मुम्बई में मीडिया और प्रेस के मुताबिक जल्द ही जनजीवन पुराने ढर्रे पर वापिस आ गया। यही सब दिल्ली में पिछले साल हुए आतंकवादी हमले के बाद हुआ था। जनजीवन अगले दिन ही सामान्य हो गया था। सवाल यह है कि रोजन्दारी, नौकरी पेशा या व्यापार करने वालों के पास दूसरा विकल्प है कहाँ? मौत का एक दिन तय है यह मान कर सभी जल्दी सामान्य हो जाते हैं। डर और खौफ भी थोड़े दिन बाद दूर हो जाता है।

दुनिया के कई देशों में आतंकवादी हमले होते रहे हैं। श्रीलंका में तो आतंकवादी हमले कई बरसों से जारी हैं। इनमें कई बड़े-बड़े नेताओं और फौज के अधिकारियों की जानें भी गयी हैं। पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी की हत्या भी आतंकवादियों के हमले में हुई। अक्सर देखने में आया है कि आतंकवादी हमलों के बाद राजनेताओं, राजनीतिक पार्टियों, आई.बी, पुलिस और सुरक्षा बलों को कसूरवार ठहराया जाता है यह कहकर कि चेतावनियों और पूर्व सूचनाओं के बावजूद भी हमलों को रोकने में नाकाम रहे। लेकिन अगर 11 जुलाई समेत पिछले दो तीन आतंकवादी हमलों पर गौर करें तो लगेगा कि पूरा षडयंत्र इस तरह रचा जाता है कि सुरक्षा एजेंसियों के लिये इसका असर कम करना मुमकिन नहीं होता।

हमें यह मानना होगा कि आतंकवादी सुरक्षा बलों पर भारी पड़ते हैं। वो तय करते हैं कि वो कब और कहाँ हमला करेंगे अगर ऐसा न होता तो अमेरिका में 9/11 न होता। इस सबके बावजूद भी ये कहना पड़ेगा कि मुम्बई बम धमाकों में पुलिस ने लापरवाही बरती। आई.बी ने आरडीएक्स और हथियारों की खबर पहले ही पुलिस को दे दी थी। अगर मुम्बई पुलिस वक्त पर कार्यवाही करती तो आतंकवादियों पर काबू पाया जा सकता है। धमाकों के बाद की जाँच के बाद लश्करे तैयबा शक के घेरे में आता है। सरकार निरंतर हमें यह बताती आयी है कि इस ग्रुप ने कश्मीर में कई बड़ी-बड़ी वारदातों को अंजाम दिया है। जानते हुए भी महाराष्ट्र पुलिस ने इसके कार्यकर्ताओं के खिलाफ कोई गम्भीर कदम नहीं उठाया। यूँ तो बार-बार कहा जाता है कि लश्कर बड़ी तादाद में स्थानीय युवाओं की भर्ती कर रही है लेकिन इस पर सरकार ने स्वयं क्या

कार्यवाही की? ज़ाहिर है लश्कर ने बड़ी होशियारी से देश के हालात की कमज़ोरियों का फायदा उठाया। कमज़ोरियों से यहाँ मतलब भाजपा द्वारा फैलाया जा रहा जहरीला बहुसंख्यकवाद और सांप्रदायिक हिंसा से है। मीडिया और अखबार लगातार लिखते रहते हैं कि खुफिया एजेंसियों को चाक चौबंद होना चाहिये, गुजरात, कर्नाटक पर खास ध्यान देने की ज़रूरत है ताकि मोदी सरीखे अल्पसंख्यक कट्टरपंथियों की भर्ती न की जाए। पर सच तो यह है कि आतंकवाद से लड़ने की मीडिया की भूमिका सकारात्मक नहीं है। मीडिया अच्छी तरह से जानता है कि वो 'डर' का निर्माण बहुत ही प्रभावशाली ढंग से कर सकता है और वो यही कर रहा है। इस संदर्भ में आतंकवाद की खबरों के निर्माण को देखना ज़रूरी है। सबसे ताज़ा मिसाल है एम्सटर्डम से मुंबई के लिए उड़ान में 12 भारतीयों को 'शक' की बिना पर जेल में डाल दिया जाना। देश के मीडिया ने इसे हवा में डर का आतंक यानि 'टेरर इन एअर' कहा। और ये सब ऐसे ही नहीं। वे सभी मुसलमान थे। लेकिन जब मीडिया मुसलमानों को इस्लामी आतंकवाद का पर्याय बना देती है तो इस तरह निर्मित 'डर' ज्यादा उग्र बन उठता है। गैर मुसलमानों को सारी कौम एक खास भूमिका में नज़र आने लगती है। इस तरह डर नफरत में बदल जाता है। सांप्रदायिक विद्वेष सुलगने लगता है। बेकसूर आम मुसलमान अपने आपको निरीह, असहाय, परेशान और अकेला महसूस करने लगता है। सांप्रदायिक तत्व यही चाहते हैं और आतंकवादी भी। मीडिया ये सब जानता है पर फिर भी ऐसी खबरें निर्माण करता है। मतलब साफ है मीडिया किस उद्देश्य से प्रेरित है? भाजपा की नस्लीनफरत फैलाने में।

असल में आतंकवाद को रोकने का सिर्फ राजनैतिक तरीका है। इसके अलावा न्यायिक तरीकों का मज़बूती से इस्तेमाल भी एक तरीका है। पाकिस्तान को साफ-साफ बता देना चाहिये कि वो अपने देश में आतंकवाद को मदद देना बंद कर दे। लेकिन यह इस तरह बताना चाहिये कि भारत-पाकिस्तान के बीच शांति और सद्भावना की प्रक्रिया भी जारी रहे।

आतंकवाद की समस्या की जड़ों को समाज और राजनीति दोनों ही जगह से खत्म करना होगा। इसमें वामपंथी, धर्मनिरपेक्ष और लोकतांत्रिक ताकतों की जिम्मेदारी बढ़ जाती है। उन्हें देशव्यापी राजनैतिक आंदोलन खड़ा करना होगा। साथ ही ये भी याद रखना होगा कि बुश के आतंकवाद से लड़ने के तरीकों ने आतंकवाद को अफगानिस्तान और इराक के रास्ते पश्चिम एशिया के सभी देशों में फैला दिया है। मीडिया को अपनी भूमिका पर दोबारा सोचना होगा। क्या टी.आर.पी. लोकतांत्रिक और धर्मनिरपेक्ष विचारधारा से ऊपर है? इसका जवाब सोचना होगा।

भारतीय-खानपान में विविधता होने के साथ-साथ एक साझी परंपरा और कई संस्कृतियों का मिश्रण और प्रभाव नज़र आता है। हमारे देश का खानपान कई रसों की धाराओं से समृद्ध हुआ है। एक तरफ कश्मीर है जहाँ मृणाल दंड (नदर) और हाक और कड़म जैसा शाकाहारी खाना मिलता है तो दूसरी तरफ केरल में खान-पान की पद्धति में चीन से लेकर अरब देशों की संस्कृति और परम्परा का प्रभाव नज़र आता है। केरल का उत्तमप जिस तवे पर बनता है उसको चीनाचट्टी कहते हैं मतलब चीन से आया बर्तन। इसी तरह मालाबारी पराठे को सीलोन पराठा कहते हैं। केरल में ईसाई धर्म ईसा के जन्म के एक सदी के बाद ही पहुंच गया था और फिलीस्तीन से यहूदी भी इसी दौरान आकर केरल में बसे थे। इस्लाम हमलावरों के साथ नहीं बल्कि व्यापारियों के साथ आया। मोपला व्यंजन अरबों और मुसलमानों के अपने लगते हैं और सीरीयन ईसाई व्यंजनों में डच अपनी छाप देखते हैं। इसी तरह गोवा के खाने में पुर्तगाली प्रभाव नज़र आता है। आंध्रप्रदेश में हैदराबादी खाने की बात ही अलग है यहां की बिरयानी और बघारे बैंगन कौन नहीं जानता। हैदराबादी खाने में उत्तर और दक्षिण का ही संगम नहीं है बल्कि तुर्क, अफगान, फारसी और अवधी का छौंक (तड़का) तेलंगाना प्रदेश के खाने में भी लगाया जाता है। सातवाहन साम्राज्य ने अरब सागर और बंगाल की खाड़ी को जोड़ने का काम किया नतीजा ये प्रदेश गुजराती और महाराष्ट्रीयन खाने से भी प्रभावित हुआ। चेटियार व्यापारियों का खाना शाकाहारी और मांसाहारी दोनों ही होता है। चेटीनाड के खाने में खरगोश और शार्क मछली भी शामिल रहती है। यहां का शाकाहारी खाना उत्तर भारत के कोरमा, कलिया और सालन से अलग है। केले के पत्ते में सेकी गयी मछली यहां का खास खाना है। भारत में मुगलिया खाना अनेक परंपराओं का मिश्रण है और सिर्फ मध्य एशिया की ही परंपरा पर आधारित नहीं है। मुगलिया खाना क्योंकि फौजियों का खाना है इसलिये बहुत सीधा-सादा है। नीचे हम भारत की खानपान के साझी विरासत के कुछ उदाहरण दे रहे हैं :

200 साल और 6 सम्राटों के मुगल राज ने भारत की खानपान की संस्कृति को बहुत ज़्यादा प्रभावित किया। मुगल सम्राट चंगेज़ खान और तैमूर लंग के वंशज थे और जो भी करते थे बड़े भव्य स्तर पर करते थे साथ ही स्थानीय रीति रिवाजों कला और संस्कृति को पूरी तरह आत्मसात ही नहीं करते थे उनको प्रोत्साहन समर्थन भी दिया करते थे। इसीलिये दस्तरखानों पर गुलाबी रंग के पत्थरों और संगमरमर से बने अपने महलों में बहुत स्वादिष्ट खाना परोसते थे। उन्होंने भारतीय खाने यानी मांस, पुलाव और समोसे आदि में अपने खानपान की चीज़ें जैसे मलाई, घी, मट्ठा, मिर्ची, किशमिश, बादाम, अखरोट और मूंगफली भी जोड़ दिये। मुगल अपने साथ अपने खानपान के व्यंजन के साथ-साथ अपना खाना बनाने का तरीका भी लाये, नतीजा भारतीय मांसाहारी भोजन में मांस की डिशेंज़ बढ़ गयीं। मिसाल के तौर पर 'दमपुरख्त' – मांस या हरी सब्ज़ी को घी और मिर्ची वाले दही में हल्की आंच पर पकाने का तरीका मुगल खानपान का हिस्सा है। मुगल अपने साथ मिठाइयां भी लाये जैसे बादाम, पिस्ते,

मलाई और चीनी में तैयार की गयी टंडी कुल्फी। इसी तरह जलेबी भी मुगल अपने साथ लाये जो आज भारतीय खानपान का हिस्सा बन गयी है। हम कुछ व्यंजनों के उदाहरण दे रहे हैं जो साझी विरासत के प्रतीक हैं।

भारतीय खानपान की संस्कृति पर अरब और चीनी व्यापारियों के अलावा ईरानी, मंगोल, तुर्क, अंगरेजों और पुर्तगीज़ का प्रभाव भी है। खाने में दालें, लोबिया, चावल और गेहूँ की रोटी पायी जाती है। भारतीय खानपान में मिर्ची का अपना महत्व है। मिर्ची तीखी होने के अलावा खुशबुदार भी होती है। दक्षिण भारतीय खाने में मिर्ची का काफी इस्तेमाल होता है। घी के अलावा, बंगाल में सरसों का तेल और दक्षिण में नारियल के तेल का इस्तेमाल होता है। तरह-तरह की चटनियां और तीखे अचार भी खाने के साथ इस्तेमाल होते हैं। अचारों को सिरके में रखा जाता है। अचारों में नींबू, आम और बैंगन का अचार ज़्यादातर खाये जाते हैं। जैन खानपान पूरी तरह शाकाहारी होता है। दाल, सेम और तेल के बीज ज़्यादा खाये जाते हैं।

मुगलई खानपान में मेमने का गोश्त, बिरयानी और कबाब ज़्यादा खाये जाते हैं। मुगल खानपान की संस्कृति के प्रभाव से तन्दूरी रोटी की जगह तन्दूरी नान ले ली। इसी तरह भारतीय रोटी भी तन्दूरी रोटी में बदल गयी। मुगलई तरीका भी भारतीय तरीके से प्रभावित हुआ। अब गोश्त को पहले दही और मसालों में सोखने लगे। इसी तरह भारतीय परम्परा ने मुगलई परम्परा यानी सामुदायिक और स्वादिष्ट भोजन की परम्परा अपनायी। खाना अब चांदी, चीनी या पत्थर (जेड) के बर्तनों में परोसा जाने लगा।

उत्तर भारत – उत्तर भारतीय खाने में चपाती, परांठे या पूड़ी, पुलाव, दाल और घी या मक्खन में छौंकी, तरी, मौसमी सब्जियां, पालक-पनीर, सरसों-पनीर ज़्यादातर पाये जाते हैं। खाने के साथ अचार और चटनी का भी प्रयोग होता है। रात में सोने से पहले गर्म दूध पीने का भी रिवाज़ है। उत्तर भारतीय मिठाइयों में दूध, पनीर, मैदे और सूजी के साथ काजू, किशमिश वगैरह का भी इस्तेमाल होता है। शिकंजी, लस्सी उत्तर भारत के पेय माने जाते हैं। उत्तर भारत में तंदूर में भी खाना पकाने का रिवाज़ है तंदूरी चिकन, कबाब नान और रोटी बनायी जाती है। उत्तर प्रदेश में कचौड़ी, जलेबी का चलन ज़्यादा है। अवध में गोश्त पकाने की अपनी अनूठी परम्परा है। निहारी, नान और बिरयानी बड़ी लज़ीज़ बनायी जाती है। जब हम उत्तर भारत के खानपान की रिवाजों की बात करते हैं तो इसमें कश्मीरी, पंजाबी, राजस्थानी, उत्तराखंडी, हिमाचली और अवधी खानपान के रिवाजों को शामिल करते हैं।

कढ़ी – इसको बेसन की पकौड़ियां बनाकर दही और बेसन में दम देकर पकाया जाता है और मिर्च का छौंक लगाया जाता है।

पनीर चाट – ये डिश उत्तरी पंजाब में जहां दूध और दही की बहुतायत है, पकायी जाती है। पनीर को ताजे धनिया, मिर्ची पाउडर, टमाटर, प्याज़, अदरक और काली मिर्च के मसाले में पकाया जाता है।

शहाजहाँनी बिरयानी – यह एक मुगल डिश है। इसमें आधा

पका चावल और मांस एक हांडी में तह के ऊपर तह से लगाये जाते हैं और उसमें केसर, घी, प्याज़, मिर्ची और खुशबू डाली जाती हैं। इसके बाद इस हांडी को पकाया जाता है इस पकाने के दौरान हर तह में रखे व्यंजन अपनी-अपनी महक छोड़ते हैं। पक जाने के बाद इसको बादाम और किशमिश के चूरे के साथ चांदी का वर्क लगाकर बिरयानी खाने को दे जाती है।

शाही मुर्ग बादामी (बादाम की चटनी के साथ मुर्गा) – मोरक्कन लोगों की तरह उत्तर भारत के मुगल अपना खाना बादाम में बनाना पसंद करते हैं इस डिश को बनाने के लिये मुर्ग के टुकड़ों को तेल या घी में तला जाता है फिर इसको दही, बादाम, प्याज़, इलायची के बीज, धनिये के बीज और लाल मिर्ची के पेस्ट में पकाया जाता है।

कश्मीरी परम्परा – कश्मीर में खाने को 'वाजवान' के नाम से जाना जाता है। इसमें 24 कोर्स होते हैं और गोश्त की बहुतायत होती है। मांस को कई तरह से पकाया जाता है। खाने के लिये ज़मीन पर बैठाया जाता है और धातु की बड़ी प्लेट 'तरामी' में से खाना परोसा जाता है। इसके अलावा एक मटके में लस्सी भी होती है। खाना शुरू करने से पहले तश्त-ए-नारी में सबके हाथ धुलवाये जाते हैं खाने में चार तरह के सीक कबाब के साथ मेथी, कोभी, तबक, भाज़, सफेद मुर्ग और जाफ़रानी मुर्ग परोसा जाता है। खाने में कम से कम सात डिशेंज़ ज़रूरी होती हैं। रिस्ता, रोगन जोश, तबक भाज़, दानीवल कोभी, आब गोश्त, मर्चवांगन कोभी और गुश्तबा।

पंजाबी खाने में सरसों का साग और मक्की की रोटी प्रमुखता से पायी जाती है। तंदूरी रोटी और पराठे मक्खन की डली रखकर खाये जाते हैं। साथ ही उबला हुआ चावल भी होता है।

राजस्थानी खाने में बेसन की बहुतायत होती है। खाटा, गट्टे की मंगोड़ी और पापड़ बनाये जाते हैं। रबड़ी, खिचड़ी और रोटी बाजरे या मक्का की बनायी जाती है। मिठाइयों में लड्डू, मालपुए, जलेबी, रसगुल्ला, मिशरी मावा, मावा कचौरी, सोहन हलवा और मावा आते हैं।

पूर्वी भारत – पूर्वी भारत में बंगाल, आसाम, उत्तर पूर्वी राज्य और उड़ीसा आते हैं। पूर्वी भारत में नदियां और समुद्र होने की वजह से ज़्यादातर मछली और भात खाया जाता है। बंगाली खानपान में भी मछली और भात प्रमुख है। खाना नारियल मूंगफली या सरसों के तेल में बनाया जाता है।

सरसों मुर्ग – इसको बनाने के लिये सरसों के बीज, हल्दी और लाल मिर्ची का पेस्ट मुर्ग पर लपेटा जाता है। फिर इसको पेस्ट सूखने तक पकाया जाता है। चावल के साथ खाया जाता है। ये डिश ज़्यादातर बंगाल में बनायी जाती है।

पश्चिमी भारत – पश्चिमी भारत में गुजराती, मराठी, कोंकणी, गोअन और पारसी खानपान की परम्पराएं आती हैं। गुजरात – गुजराती खानपान चीनी खानपान से प्रभावित है। गुजराती खाने के साथ मिठाई भी देते हैं। हर दाल और सब्जी में चीनी या गुड़ डालते हैं। गुजराती नमकीन 'फरसान' के नाम से मशहूर है। चिवड़ा और गाठिया भी नमकीन में आता है। गुजराती कढ़ी लस्सी में बनायी जाती है। खम्मन ढोकला, दूधपाक और श्रीखंड भी काफी खाया जाता है। महाराष्ट्रीयन खाना – महाराष्ट्रीयन खाने में नारियल और मूंगफली काफी मात्रा में इस्तेमाल होता है। खाना नारियल, मूंगफली या करडी के तेल में बनता है।

गोआनी खाना – गोआनी खाना पुर्तगाली खानपान से काफी प्रभावित है। सूप, तरी, सलाद और अचार काफी महत्व रखते हैं। समुद्री खाना (सीफूड) और नारियल की चटनी काफी प्रचलित है। गोआनी खाने में मछली, क्रैब, प्रॉन्स, लोबस्टर ज़्यादा प्रधान हैं। सब व्यंजन नारियल के तेल में बनाये जाते हैं और लहसन की चटनी के साथ खाये जाते हैं।

विन्डालू – ये डिश पुर्तगाली गोवा में पायी जाती है। शुरू में इसे पोर्क (सूअर के मांस) से बनाया जाता है पर अब मेमने के गोश्त, समुद्री खाना और हरी सब्जियों से भी बनाया जाता है। मांस को पहले सफेद जीरे, अदरक, प्याज़, इलायची और लौंग में मेरीनेट किया जाता है। इसके बाद इसे प्याज़, हल्दी, इमली की चटनी और लाल मिर्च की तीखी चटनी में पकाया जाता है। गोश्त को तब तक पकाया जाता है जब तक वो गलकर हड्डियों से अलग नहीं हो जाता।

कोंकणी खाना – उत्तर और दक्षिण भारतीय खाने का मिश्रण है। गुजराती खानपान परम्परा से भी प्रभावित है। नारियल की चटनी बहुत खायी जाती है।

दक्षिण भारत – इरायची कोलुम्बु – (सौफ और नारियल की चटनी में बनाया गया मेमने का गोश्त) यह व्यंजन तमिलनाडू में बनाया जाता है। इस डिश को गर्म मसाला डालकर तीखा बनाया जाता है। सौंफ, धनिया, हल्दी, अदरक और लहसुन और मिर्ची के पेस्ट को अच्छी तरह से भून कर मेमने का गोश्त पकाया जाता है। गोश्त में अच्छी गाढ़ी तरी रहती है जिसे चावल के साथ खाया जाता है।

पारसी खानपान परम्परा – तरीदार मछली और प्रॉन प्रमुख है 'धनसक' गोश्त और दाल साथ-साथ पकाया जाता है और चावल के साथ खाया जाता है।

पृष्ठ 15 का शेष.....

था। चौंकिए मत अगर मैं यह कहूं कि इस साल हमने 47 हज़ार करोड़ का सोना देश के बाहर से खरीदा है जो 1990 के दशक के सलाना स्वर्ण आयात के तीन गुना से भी ज़्यादा है। शेयर बाज़ार के मुकाबले से ज़्यादा पैसा तो हम बैंकों में दीर्घकालिक जमा के रूप में देते हैं। इस बात के बावजूद कि सरकार ने उन्हें बहुत कम वास्तविक ब्याज या ऋणात्मक वास्तविक ब्याज देने की कंपनी क्षेत्र की पक्षपाती ब्याज नीति अपना रखी है। अतः अब शेयर बाज़ार नये, भौतिक परिसंपत्तियों में निवेश

का माध्यम नाम मात्र का रह गया है। उसकी मुख्य भूमिका देशी-विदेशी तेजड़ियों को बिना उत्पादन, बिना रोजगार, बिना तकनीकी प्रगति में सहभागी हुए करोड़ों-अरबों रुपयों की अनार्जित तथा कर-मुक्त आय प्राप्त करना रह गयी है। संसेक्स की उछाल इस छोटे से तबके की खुशहाली की चिंता करता है। दुःख तो यह है कि हमारा मीडिया वास्तविकता का विश्लेषण किए बिना खुश होता रहता है और आबादी के व्यापक हिस्से की बदहाली के कारणों को नजरअंदाज़ करता रहता है।

गुरशरण सिंह पंजाब के जाने माने नाटककार हैं। अपने प्रगतिशील नाटकों के लिये वे जाने जाते हैं। रंगमंच को उनके नाटकों और उनसे संदेश के रूप में बड़ी विरासत मिली है। उनसे बातचीत के कुछ अंश :

मेरी अभिनय यात्रा शुरू हुई अपने स्कूल के मास्टर्स की नकल से। उन दिनों अरबी या विज्ञान में से एक विषय चुनना होता था। हम मास्टर नारायण जी से विज्ञान पढ़ते थे। अपने विद्यार्थियों को डांटने डपटने का उनका खास लहजा था। देसी मुहावरों का तड़का लगाकर वह काव्यात्मक शैली में छात्रों को झिड़कते थे। किसी लड़के को विज्ञान का सबक याद न होता तो वे कहते, 'सूर दे सूरया, गफूर दे गफूरया अरबी छोड़कर साइंस ली, तेरी मां ने 'बम्बे' चलाने थे ?' उनकी फटकार की नकल करना मेरा प्रिय शगल था।

एक मास्टर और थे, जो बात-बात पर उठक-बैठक लगवाने लगते। आखिरकार, हम कुछ दोस्त मास्टर जी के कक्षा में दाखिल होते ही बैठकें लगाना शुरू कर देते। मास्टर जी आते ही पूछते, 'भई, ये क्या हो रहा है ?'

'आपने बाद में तो लगवानी ही है, इसलिए हमने पहले ही शुरू कर दी।' — हमारा जवाब होता।

अगर औपचारिक प्रस्तुति की बात करनी हो तो शनिवार को आधी छुट्टी के बाद स्कूल में होने वाले सांस्कृतिक कार्यक्रम में भी अपने मास्टर्स की नकल करना मेरी पहली 'स्टेज परफॉरमेंस' थी।

नाटकों के प्रति ज़्यादा लगाव बढ़ा, नाटक देख-देखकर। अमृतसर के प्रीतनगर इलाके में एक टैंक था, उस टैंक तक जाने के लिए बड़ी-बड़ी सीढ़ियां हुआ करती थीं। उन सीढ़ियों के बीचों-बीच स्टेज बनता था और वहां नाट्य-उत्सव होते थे। बलवन्त गार्गी का 'राई का पहाड़' और 'लोहा कुट' मैंने यहीं देखे थे। इन नाटकों के दृश्य आज भी मेरे स्मृति पटल पर अंकित हैं। मेरे ख्याल से उस दौर के प्रोग्रेसिव थियेटर की शुरुआत नाटक 'लोहा कुट' को ही माना जाएगा।

इसके अलावा अमृतसर के रियाल्टो सिनेमा में भी नाटक होते थे। 'एस्थेटिक क्लब' द्वारा अक्सर ही रियाल्टो सिनेमा में नाटकों का मंचन होता था। इस क्लब के प्रभारी थे प्रसिद्ध चित्रकार सरदार सोभा सिंह। उन्हें 'मोनो-एक्टिंग' में महारत हासिल थी। 1946 में इसी सिनेमा हाल में उनके द्वारा प्रस्तुत एकल अभिनय "नल पर पानी भरती दो औरतों की लड़ाई" मुझे आज भी याद है।

फिर आया 1947 — विभाजन। पिछली सदी में इस मुल्क की सबसे बड़ी त्रासदी। वह दौर मैंने अपनी आंखों से देखा है — बच्चों के शव, मार-काट, गाड़ियों में भरी कटी-फटी खून से सनी लाशें। मैं आज भी उन दिनों को याद करता हूँ तो सारा मंजर आंखों के सामने घूमने लगता है। औरतों पर हुए जुल्मों को याद करके तो आज भी दिल दहल उठता है।

औरतों के बलात्कार के बाद हत्या, तलवारों पर टंगी उनकी छातियां . . .।

उसी दौर की एक घटना है — 19 अगस्त 1947 की बात है। हम कुछ लड़के-लड़कियां कॉलेज में बैठे थे। हमने सुना कि हाल बाजार में कटरा जयमल सिंह के पास, मुसलमान लड़कियों का 'नंगा जुलूस' निकाला जा रहा है — सुनकर हमारा खून खौल उठा था। हम पांच लड़के और दो लड़कियां साइकिलें लेकर हाल बाजार की ओर दौड़ पड़े। बड़ा भयानक दृश्य था। उस समय के दो स्थानीय नेता उधम सिंह नागोकी और ईसर सिंह मिजायल घोड़ों पर नंगे जुलूस की अगवानी कर रहे थे। हम सभी छात्र जुलूस के सामने खड़े होकर नग्न लड़कियों को कपड़े पहनाने के लिए नेताओं से उलझने लगे। जब वे हमारी बात सुनने की बजाय हमसे ही डांट-फटकार करने लगे तो हमारी साथ आई दोनों लड़कियों ने अपने कमीजों के बटन खोलने शुरू कर दिए और कहा कि इन लड़कियों के कपड़े वापस दो अन्यथा हम भी यहीं बीच बाजार में नंगी हो रही हैं और आप लोग अपनी बेटियों के नंगेच का भी आनन्द लो। इस बात का असर हुआ। जुलूस रोक दिया गया।

बहुत वर्ष बाद नागोकी मुझे एक कार्यक्रम में मिले थे। जब मैंने उन्हें बताया कि उनके घोड़े मैंने ही रोके थे तो उन्होंने कहा कि आप लोगों ने ठीक किया था। उस वक्त हम लोगों पर एक जुनून सवार था।

यह एक ऐसा ज़लज़ला था, जिसमें विद्वान, बुद्धिजीवी, नेता सब बह गए थे। मैं कह सकता हूँ कि सिर्फ 'कम्युनिस्ट आइडियोलॉजी' के लोग इस तूफान में टिके रहे। इसी दौर में मुझे जिन्दगी का यह सबक स्पष्ट हो गया कि इंसानियत धर्म के ऊपर है। मैं फख्र के साथ ये कह सकता हूँ कि धर्मनिरपेक्षता के हिसाब से मैं जीवन में कभी नहीं डिगा — चाहे बंटवारे की बात हो या पंजाब में आतंकवाद की।

पंजाब में दलित बस्ती को 'वेड़ा' या 'ठठ्ठी' कहते हैं। खालसा कालेज में 'वेड़े' के कुछ लड़के हमारे साथ हॉकी खेलने आते थे। वे लड़के ज़्यादा पढ़े-लिखे तो नहीं थे पर हॉकी अच्छी खेलते थे और बहुत हाज़िर जवाब थे। उनमें से दो तीन लड़कों से मेरी गहरी दोस्ती थी।

गुरुनानक देव जी के जन्म दिन 'गुरपूरब' की बात है। लंगर चल रहा था। ऊंची जाति वाले लोगों का लंगर अलग और 'वेड़े' वालों का अलग। 'वेड़े' वाले मेरे एक दोस्त ने मुझे संकेत किया, 'हो जाए कुछ' मैंने संकेत में हां कहा, 'हो जाए'। मेरे दोस्त ने खड़े होकर कहा, 'लंगर पंगत में ही होता है, हम सब पंगत में ही बैठकर लंगर लेंगे।' ऊंची जाति वालों ने

प्रतिवाद किया तो 'वेड़े' वाले सब लोग, प्रो. साहब सिंह और मैं यह घोषणा करते हुए उठ खड़े हुए कि 'वेड़े' का लंगर शाम को अलग से 'वेड़े' में ही होगा। वेड़े में शाम को अलग से गुरपूरब मनाया गया। वह मेरे जीवन की पहली बगावत थी।

एक थे प्रिंसिपल जोधा सिंह। एक दिन वह गुरुद्वारे में गुरुवाणी का पाठ करते हुए उपदेश दे रहे थे कि 'रब के बनाए सब मुनुख समान हैं, कोई ऊंच-नीच नहीं होता।' वगैर-वगैरा। इतने में ही भरी सभा में उनका नेपाली नौकर उठ खड़ा हुआ और बोला, 'इन्हें कहो मेरी छह महीने की तनखाह भी दे दें।' हम कुछ छात्र भी उस प्रार्थना सभा में बैठे थे।

जीवन में घटित होने वाले इस तरह के दृश्यों का मैंने अपने नाटकों में भी प्रयोग किया। मेरे नाटक 'खम्बा वाई खुई' में जब एक पात्र कहता है, '.....हम सब एक हैं, लेकिन जब बेटा ब्याहने की बात आती है तो ऊंच-नीच आ जाती है। पाखंडी कहीं के।' इस पात्र की रचना करते समय प्रिंसिपल जोधा सिंह के नेपाली नौकर की छवि मेरे मस्तिष्क में थी।

इन तमाम वर्षों में एक और बात जो मैंने जानी-समझी है वह यह कि विज्ञान महान है। अगर व्यक्ति के जीवन में वैज्ञानिक सोच आ जाए तो उसका जीवन बदल सकता है। धर्म तो मात्र कहने भर को कहता है – सभी मनुष्य एक हैं : लेकिन विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि मानसिक, शारीरिक एवं आत्मिक रूप से हर नस्ल, जाति और रंग वाला व्यक्ति समान रूप से समर्थ है। आज इस वैज्ञानिक युग में कोई व्यक्ति यदि कहता है कि वह ऊंचे वर्ण का है तो मेरी दृष्टि में वह मूर्ख दर मूर्ख दर मूर्ख दर मूर्ख है।

आज के पंजाब में चार किस्म के 'मेल शावनिज्म' हैं – पंजाबी, सिक्ख, जट्ट और मर्द। हमारे गीतों में भी यह साफ झलकता है। ठीक है कि पंजाब के लोगों ने बहुत लड़ाईयां

लड़ी हैं, लेकिन यह भी ठीक है कि दुनिया की कौन सी कौम ने अपने अस्तित्व एवं सम्मान के लिए कुबार्नियां नहीं दी ? क्यूबा और वियतनाम के लोगों के संघर्ष से जैसे पंजाबी वाकिफ़ ही नहीं हैं।

आज का पंजाबी सभ्याचार खासकर भंगड़ा काफ़ी अक्खड़ हो गया है। इसकी तमाम बोलियां, शैलियां संवेदनहीन हो गई हैं और इसका पूरा व्याकरण अहंकारी आत्ममुग्धता से लिप्त प्रतीत होता है। कलाकारों को 'मान' और 'अभिमान' में अंतर समझने की ज़रूरत है।

आज कलाकारों पर भारी ज़िम्मेदारी है – सबसे पहले तो वे यह समझें कि वे यह सब क्यों कर रहे हैं ? उनकी कला समाज को आगे ले जा रही है या नहीं ? साथ ही कलाकारों का आत्म-सम्मान जीवित रहना ज़रूरी है – किसी के आगे हाथ फैलाने तथा भीख मांगने की ज़रूरत नहीं है।

ज्ञानी जैल सिंह जब पंजाब के मुख्यमंत्री थे तो उन्होंने मुझसे नाराज़ होकर टिप्पणी की थी कि 'ये आदमी तो मुझसे भी नहीं डरता।' – मुझे जब इस घटना का पता चला तो मेरा यही उत्तर था कि 'मेरे पास ज्ञानी जैल सिंह से डरने का कोई कारण नहीं है, अगर दोनों में से किसी एक को डरना ही है तो ज्ञानी जी को मुझसे डरने की ज़रूरत है।'।

मैंने तो अपने जीवन में जो करना था कर लिया, जब तक हाथ पांव चल रहे हैं, थोड़ा बहुत और करने की कोशिश करूंगा; पर मेरी उम्मीदें युवा पीढ़ी पर टिकी हैं। भगत सिंह का जन्म शताब्दी वर्ष भी आ रहा है – आओ इस साल मिलकर कुछ ऐसा करें कि लगे कि भगत सिंह की रूह धरती पर उतर आई है और इस देश के हज़ारों लाखों भगत सिंहों को अन्याय और शोषण के खिलाफ़ लड़ने की प्रेरणा दे रही है। इंकलाब ज़िंदाबाद।

विश्व रंगमंच दिवस – लहरा गागा के 'रुबरू' कार्यक्रम पर आधारित

प्रकाशन मंडल

नीलम रावत, श्रुति चतुर्वेदी, कुसुम कुमारी,
चंचल सिंह गढ़िया, मोहन सिंह नेगी, डॉ. योगेश भटनागर
संपादक (हिन्दी)
मोहन सिंह नेगी

isd इंस्टीट्यूट फॉर सोशल डेमोक्रेसी

फ्लैट नम्बर-110, नम्बरदार हाउस,

62-ए, लक्ष्मी मार्केट, मुनिरका

नई दिल्ली-110067

टेलीफोन : 011-26177904

ईमेल : notowar@rediffmail.com

केवल सीमित वितरण के लिए